शैक्षणिक

# संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 74 (मूल क्रमांक 131)
नवम्बर-दिसम्बर 2020 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहायक सम्पादक
पारुल सोनी
कोकिल चौधरी

सम्पादकीय सहयोग
विनता विश्वानाथन
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

# शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 74 (मूल क्रमांक 131)
नवम्बर-दिसम्बर 2020

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 73
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब संदर्भ आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

| सदस्यता शुल्क | एक साल (6 अंक) | तीन साल (18 अंक) | आजीवन |
|---|---|---|---|
| | 450.00 | 1200.00 | 8000.00 |

**मुखपृष्ठ:** ***पाठ्यपुस्तकों की भाषा।*** शिक्षाविदों के बीच चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है कि क्या स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में उपयोग की जाने वाली भाषा का बच्चों के सीखने-सिखाने से कोई सम्बन्ध है। यह लेख मुख्य रूप से इसी चर्चा को आगे बढ़ाता है कि हम विज्ञान पढ़ाते वक्त किस तरह की क्लिष्ट भाषा का उपयोग करते हैं और समझने की कोशिश करते हैं कि क्या इस तरह की भाषा के प्रयोग को टाला जा सकता है। पढ़िए लेख पृष्ठ 05 पर। *चित्र - निधिन डोनाल्ड।*

**पिछला आवरण:** ***कॉमन मोरमोन तितली कॉमल रोज तितली की नकल करती हुई।*** छोटे कीटों में तितली हमारी जीव-सृष्टि का नायाब और महत्वपूर्ण घटक है। इस धरातल पर तितलियों को जिन्दा रहने के लिए कई तरकीबें अपनानी पड़ती हैं, जैसे एक बेहतरीन तरकीब है, नकल यानी मिमिक्री, जिसे अनुकूलन का भी एक विशेष तरीका माना जाता है। इस लेख में समझते हैं कि नकल से तितली को क्या लाभ हो सकता है और उसके कई अन्य रोचक तथ्य पृष्ठ 11 पर। *फोटोग्राफ - संकेत राउत*

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 3 - http://www.flowersofindia.net/catalog/slides/Bottle%20Gourd.html

शैक्षणिक

# संदर्भ

"संदर्भ अब रजिस्टर्ड डाक से
यानी आप तक पहुँचना सुनिश्चित।"

संदर्भ की सदस्यता दर बढ़ाई जा रही है ताकि
संदर्भ रजिस्टर्ड डाक द्वारा आप तक भेजी जा सके

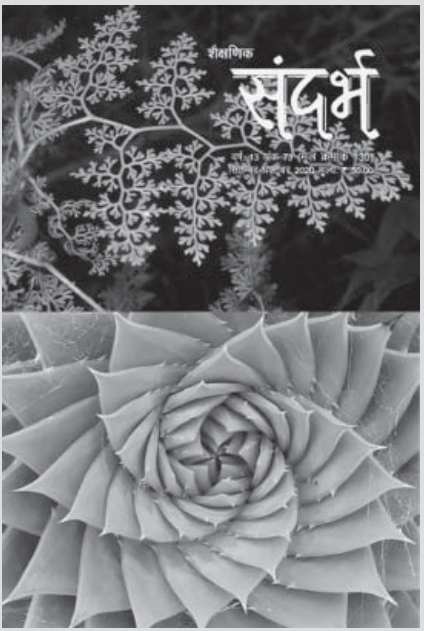


एक प्रति का मूल्य 50 रुपए

सदस्यता शुल्क

एक साल
450 रुपए

तीन साल
1200 रुपए

आजीवन
8000 रुपए

---

प्रति बाउंड वॉल्यूम
300 रुपए

ई-मेल: pitarakart@eklavya.in
वेबसाइट: www.pitarakart.in

## ज्ञान का स्वामित्व और नाटक प्रक्रिया

शिक्षा के रचनावादी और निर्माणवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत यह माना जाता है कि एक बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है। आखिर इस 'ज्ञान के स्वामित्व' का क्या मतलब है? इस सवाल को टटोलते हुए, नाटक की प्रक्रिया में इसको हासिल करने की सम्भावना को खोजने वाला यह लेख अनुभवात्मक चर्चा प्रस्तुत करता है।

53

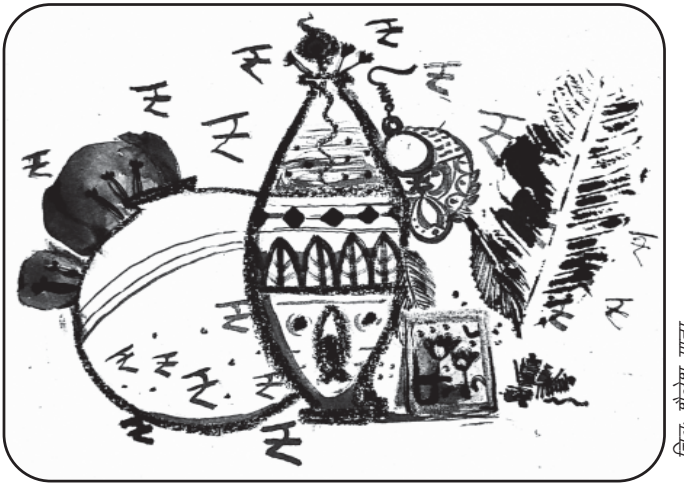

चित्र: श्लेष गुप्ता

## महाराष्ट्र के सरकारी-अनुदान प्राप्त...

महाराष्ट्र में कई स्कूलों में अर्ध-अँग्रेज़ी यानी सेमी-इंग्लिश नीति अपनाने की अनुमति थी इसलिए सेमी-इंग्लिश स्कूलों की परिपाटी रही है। ये स्कूल हैं तो मराठी माध्यम के, परन्तु माध्यमिक शाला में विज्ञान और गणित के लिए अँग्रेज़ी पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करते हैं। इस कारण बच्चे इन्हीं स्कूलों में टिके हुए हैं और प्राइवेट स्कूल की तरफ पलायन कम हुआ है। इस मुद्दे में विरोधाभास तो यह है कि जहाँ महाराष्ट्र में अँग्रेज़ी सीखने की महत्वाकांक्षा के लिए एक मध्य-मार्ग अपनाया गया है, वहीं आदिवासी भाषाओं के प्रति नकारात्मक नीति अपनाई गई है। इसी चर्चा के साथ अन्य पहलुओं को भी विस्तारपूर्वक पढ़ते हैं उपरोक्त लेख में।

63

# शैक्षणिक संदर्भ

अंक-74 (मूल अंक-131), नवम्बर-दिसम्बर 2020

इस अंक में

05 | ये किस हिन्दी का उपयोग करती हैं पाठ्यपुस्तकें?
उमा सुधीर

11 | धोखेबाज़ तितलियाँ
संकेत राउत

20 | ज़मीनी हकीकत
विवेक मेहता

27 | ज़िद्दी सवाल और विरोधाभास - भाग-5
शेषागिरी केएम राव

46 | एक कहानी कई विचार
नीतू यादव

53 | ज्ञान का स्वामित्व और नाटक प्रक्रिया
मौअज़्ज़म अली

63 | महाराष्ट्र के सरकारी-अनुदान प्राप्त सेमी-इंग्लिश स्कूलों...
अरविंद सरदाना

77 | फरिश्तों के चेहरों पर रंग
मार्क ओ'सुलीवन

90 | फन्नी-प्लास्टिक कैसे बनती है?
सवालीराम

# संदर्भ अब ईपब फॉर्मेट में!

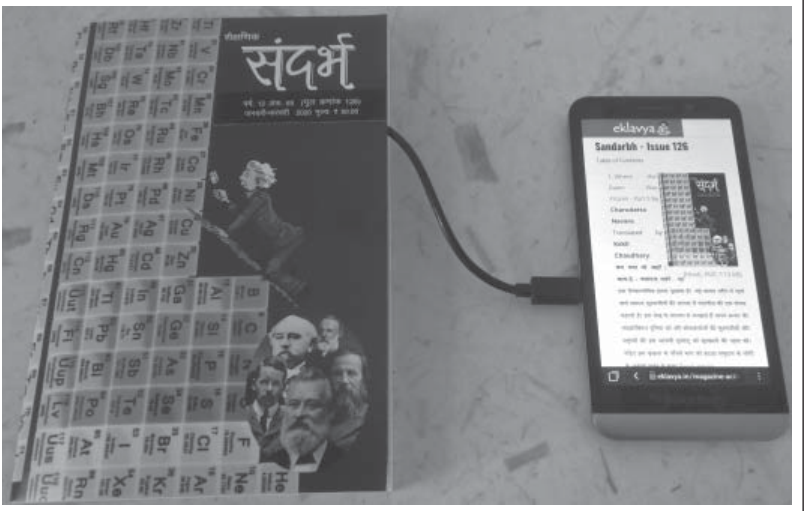


## संदर्भ हमेशा होगी आपके पास
## लीजिए नई ईपब सदस्यता

| सदस्यता शुल्क | एक साल | तीन साल |
|---|---|---|
| | 150 रुपए | 400 रुपए |

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए**

ई-मेल: pitarakart@eklavya.in

वेबसाइट: www.pitarakart.in

# ये किस हिन्दी का उपयोग करती हैं पाठ्यपुस्तकें?

उमा सुधीर

मैं बच्चों और शिक्षकों, दोनों के साथ विज्ञान की कुछ बुनियादी अवधारणाओं पर काम करने के अपने अनुभव साझा करना चाहूँगी। और यह लेख मुख्य रूप से इस बारे में है कि हम विज्ञान पढ़ाते वक्त किस तरह की भाषा का उपयोग करते हैं। मुझे यकीन है कि गणित और सामाजिक विज्ञान पढ़ाते हुए भी यही दिक्कतें उभरेंगी, लेकिन मैं उनके बारे में अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कुछ नहीं कह सकती। और यह लेख खास तौर से हिन्दी के बारे में है क्योंकि मेरा काम हिन्दी-भाषी क्षेत्र में रहा है। हो सकता है कि ऐसी समस्याओं पर देश-भर में बातचीत हो रही है, लेकिन, एक बार फिर, मैं हिन्दी के उपयोग या दुरुपयोग को लेकर चिन्ता साझा करना चाहती हूँ।

## लोकप्रिय लेखन बनाम पाठ्यपुस्तकें

शुरू करती हूँ यहाँ से कि मैंने हिन्दी में आलेख पढ़ना शुरू कैसे किया था। मैं दक्षिण भारतीय हूँ और अँग्रेज़ी माध्यम से पढ़ी हूँ, तो जब तक मैं *एकलव्य* से नहीं जुड़ी थी, किसी भी अन्य भाषा के तकनीकी

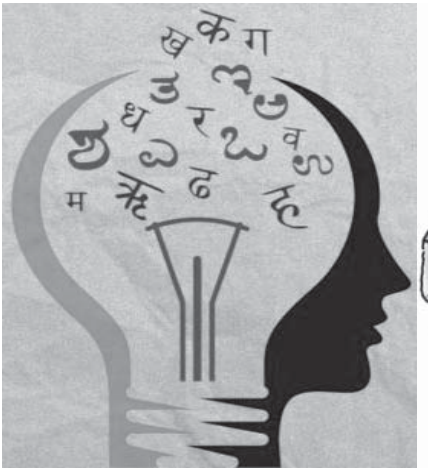

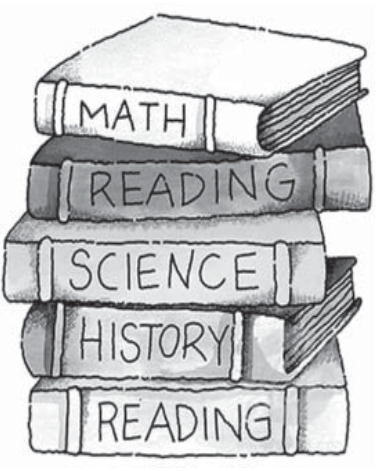


शब्दों से मेरा परिचय शून्य था। हिन्दी की ओर मेरे कदमों में *एकलव्य* के प्रकाशनों ने बहुत मदद दी क्योंकि उनमें जिस भाषा का उपयोग किया गया है, वह बहुत दोस्ताना है। और फिर आईं पाठ्यपुस्तकें – बाप रे! न सिर्फ वे उन जगहों पर भी पारिभाषिक शब्दों का उपयोग करती हैं जहाँ परिचित व सरल शब्द उपलब्ध हैं, बल्कि उनकी लेखन शैली भी रूखी और औपचारिक होती है। मुझे याद है कि मैं 'क्वथनांक' (जो स्वर-व्यंजन विश्लेषण के आधार पर ccvccvcc है) शब्द पर अटक गई थी। ऐसा नहीं है कि विभिन्न भाषाओं में व्यंजनों की ऐसी लड़ियाँ नहीं होतीं किन्तु यह शब्द न सिर्फ दुष्कर था बल्कि व्यंजनों का एक ऐसा संयोजन था कि ज़ुबान लड़खड़ा जाए। यह शब्द बॉइलिंग पॉइन्ट या उबलने के तापमान के लिए था। कई व्यंजनों के ऐसे समूह मुझे हर बार परास्त करते रहे और मैं सोचती रही कि कक्षा 6 व 7 में हम 'उबलने का तापमान' शब्द का उपयोग क्यों नहीं कर सकते और सटीक शब्द बाद में कभी जोड़ दें?

जैसा कि पहले कहा गया, कठिनाई सिर्फ तकनीकी शब्दों की नहीं है, आम वाक्यों में भी ऐसे शब्दों का उपयोग किया जाता है जो आम तौर पर इस्तेमाल नहीं किए जाते। और इस वजह से छात्रों के लिए इबारत को पढ़ना और समझना मुश्किल हो जाता है।

## छात्र कुछ सीख कैसे पाएँगे?

यह बात मन में आती है क्योंकि नीतिगत दस्तावेज़ों में हमेशा मातृभाषा यानी परिचित भाषा के उपयोग पर

| | |
|---|---|
| अध्याय 1 | 1. ऊर्जा की पुनःप्राप्ति हेतु आपको भोजन की आवश्यकता होती है।<br>2. जीवन के लिए जल अनिवार्य है। |
| अध्याय 4 | 1. हस्त चालित अपकेन्द्रक मशीन (चित्र का शीर्षक)<br>2. फिल्टर में सेरेमिक के बने एक सरन्ध्र पात्र (कैंडल) से जल को प्रवाहित करते हैं। |
| अध्याय 5 | 1. भौतिक परिवर्तनों में ऊष्मा का या तो अवशोषण होता है या उत्सर्जन। |
| अध्याय 6 | 1. सर्वप्रथम सिलेंडर के सबसे छोटे भाग द्वारा दर्शाए जाने वाले आयतन को ज्ञात कीजिए। |
| अध्याय 10 | 1. आप पाएँगे कि स्थिर अवस्था में वस्तुओं की स्थिति में समय के साथ कोई परिवर्तन नहीं होता। |
| अध्याय 13 | 1. स्वास्थ्य कुछ आन्तरिक तथा बाह्य कारणों से प्रभावित होता है। |

ज़ोर दिया गया है। NCF 2005 के भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद (पृष्ठ 36) में:

"भाषाएँ स्मृतियों और संकेतों का भण्डार भी उपलब्ध कराती हैं, जो अपने हमज़ुबान लोगों से विरासत में मिलता है और अपने जीवन काल में निर्मित किया जाता है। भाषाएँ वे माध्यम भी हैं जिनके ज़रिए अधिकांश ज्ञान का निर्माण होता है, इसलिए वे व्यक्ति के विचारों और पहचान से नज़दीकी से जुड़ी होती हैं। दरअसल, वे पहचान के साथ इतनी करीब से बँधी होती हैं कि किसी बच्चे की मातृभाषा को नकारना या खत्म करना उसके स्व के एहसास के साथ खिलवाड़ करने के बराबर है।"

ज़रा सोचिए, इन बच्चों के साथ कैसी हिंसा हो रही है। स्थिति और भी संगीन हो जाती है क्योंकि इनमें से अधिकांश बच्चे 'मानक हिंदी भाषी' नहीं हैं बल्कि छत्तीसगढ़ी तथा हल्बी, बैगानी, भूलिया, कलंग, सरगुजिया भाषी हैं।

छात्रों को हिन्दी के पारिभाषिक तकनीकी शब्दों से परिचित कराने के लिए मिडिल स्कूल में ही ऐसे शब्द शामिल करने के प्रयास भी सफल नहीं रहे हैं क्योंकि कॉलेज शिक्षकों ने मुझे बताया है कि उनके छात्र जवाब तो हिन्दी में लिखते हैं लेकिन अँग्रेज़ी तकनीकी शब्दों का उपयोग करते हैं।

## तकनीकी शब्दों की समस्या

मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि मूल अँग्रेज़ी-भाषियों को भी यही दिक्कत होती है। एक बार एक पुर्तगाली पोस्ट-डॉक छात्र मेरी मेहमान रही थी जो पुर्तगाल में स्नातकोत्तर शिक्षा के बाद पीएच.ड़ी. के लिए इंग्लैंड गई थी। उसने मुझे बताया कि उसे अँग्रेज़ी में तकनीकी शब्दों से कोई दिक्कत नहीं होती क्योंकि ऐसे अधिकांश शब्द यूनानी और लैटिन मूल के हैं (जैसे हिन्दी में वैज्ञानिक शब्द संस्कृत मूल के होते हैं), जो उसकी मातृभाषा के करीब हैं। उसने आगे बताया कि अँग्रेज़ी-भाषी छात्रों को यही तकनीकी शब्द अपरिचित और भारी-भरकम लगते हैं। मेरे लिए, सारे अँग्रेज़ी शब्द 'विदेशी' हैं जिन्हें सीखना पड़ता है। विज्ञान के शब्दों का मूल लैटिन और यूनानी होने की बात इसी हद तक महत्व रखती है कि इससे उनके उच्चारण का सुराग मिलता है (उदाहरण के लिए 'chiral' यूनानी से निकला है, इसलिए शुरुआती ध्वनि 'च' नहीं बल्कि 'क' होगी)।

मसलन, वे प्रकाश संश्लेषण नहीं बल्कि फोटोसिन्थेसिस शब्द का उपयोग करेंगे।

## सहज भाषा क्यों नहीं?

जैसे-जैसे हिन्दी से मेरा सम्पर्क बढ़ा, मैं इस अन्तर को समझने लगी। पाठ्यपुस्तकें ऐसी किसी भी चीज़ के उपयोग से कतराती हैं जो शुद्ध हिन्दी न हो, जिसे मैं 'शुद्ध शाकाहारी हिन्दी' कहने लगी हूँ। तो, किसी भी हिन्दी-भाषी प्रान्त में जाइए और अखबार पढ़िए, आपको 'कोशिश' जैसे शब्द पढ़ने को मिलेंगे, लेकिन क्या ऐसे शब्द पाठ्य पुस्तकों में मिलेंगे? कदापि नहीं! क्योंकि 'कोशिश' को हिन्दी नहीं, उर्दू माना जाता है। अर्थात जो शब्द किसी क्षेत्र के लोगों की ज़ुबान पर सहजता से आते हैं, वे उन लोगों को बिलकुल नहीं सुहाते जो पाठ्यपुस्तकों को मंज़ूरी देते हैं और इसी बिला पर तय करते हैं कि उन्हें कैसे लिखा जाएगा।

यह चीज़ लोगों को दूर करती है और उन्हें यह सोचने को मजबूर करती है कि पाठ्यपुस्तकों में जो बातें लिखी हैं वे रोज़मर्रा के जीवन से अलग हैं। यह बात मेरे एक पसन्दीदा उपाख्यान से उभरी है जिसका सम्बन्ध इस बात से है कि शब्दों में हमारी सोच को बदलने की ताकत होती है। तो हम पानी जैसी एक साधारण-सी चीज़ पर बात करते हैं। आप कहीं भी जाइए लोग (अपने वाक्य में अलग-अलग स्तर का सम्मान घोलकर) आपसे पूछेंगे, "पानी पीओगे?" लेकिन पाठ्यपुस्तकों में (और मैं फिर से दोहरा दूँ कि मैं सिर्फ

विज्ञान पाठ्यपुस्तकों की बात कर रही हूँ) लगातार 'जल' शब्द का उपयोग किया जाता है। हम शिक्षकों की एक कार्यशाला में थे जहाँ शुद्ध पदार्थों और मिश्रणों की बात कर रहे थे (जो रसायन शास्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण भेद है), और हम इस बात पर चर्चा करना चाहते थे कि पानी एक शुद्ध पदार्थ है या नहीं। शिक्षकों के बीच आम सहमति बनी कि पानी में आम तौर पर ऑक्सीजन व अन्य गैसें घुली होती हैं और साथ में तमाम किस्म के लवण और (छि:!) सूक्ष्म जीव होते हैं। तो हमने पूछा कि "लेकिन क्या पानी शुद्ध रूप में मिल सकता है?" इससे गर्मागरम बहस छिड़ गई कि लवणों, गैसों वगैरह को कैसे हटाया जा सकता है। लेकिन यह सब अचानक थम गया, जब एक शिक्षक ने खड़े होकर घोषणा की – "अगर वह शुद्ध है तो पानी नहीं है, वह जल है!!!" अर्थात जल की वही 'पवित्रता' है जो पानी के सूत्र '$H_2O$' की है।

## सरल भाषा सीखने के लिए ज़रूरी

विज्ञान पढ़ाते हुए छात्रों को हम ऐसी अवधारणाएँ सिखाने की कोशिश करते हैं जो मुश्किल तथा प्राय: सहज-बोध के विपरीत होती हैं। ऐसे में हम ऐसे शब्दों का उपयोग करके इसे और मुश्किल बनाने पर क्यों अड़े रहते हैं, जिनका उपयोग छात्र कक्षा के बाहर कभी नहीं करेंगे? मैंने यह सब अँग्रेज़ी में पढ़ा था और मुझे सिर्फ अवधारणाओं से जूझना पड़ा था क्योंकि मैं खूब पढ़ती थी, इसलिए भाषा कभी बाधा नहीं बनी। लेकिन मैं समझ सकती हूँ कि इन पाठ्य-पुस्तकों के अँग्रेज़ी संस्करण भी इतने ही दुरूह होंगे। इसका कारण विचित्र है।

NCF 2005 और इसके आधार पर पाठ्य पुस्तकों को बनाने में जो काम हुआ, उसमें संवाद की अजीब-सी दूरियाँ थीं। सिर्फ विषयों के बीच नहीं, बल्कि विभिन्न कक्षाओं के लिए एक ही विषय पर काम करने वाले लोगों के बीच (वह एक अलग कहानी है)। लेकिन तथ्य यह था कि अलग-अलग विषय के लोग अपने-अपने स्वतंत्र महलों में काम कर रहे थे, जिसका मतलब यह रहा कि जो लोग भाषा के लिए मानकों की चर्चाएँ कर रहे थे, वे गणित, विज्ञान या सामाजिक विज्ञान में काम कर रहे लोगों से वार्तालाप नहीं कर रहे थे। तो किसी भी कक्षा की पाठ्यपुस्तक उठा लीजिए, अँग्रेज़ी और हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें जिस स्तर की भाषाई दक्षता की मांग करती हैं, वह गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों में इस्तेमाल की गई भाषा (और अपेक्षा) से एकदम अलग है।

यकीनन, आप किसी भाषा में दक्षता मात्र भाषा की निर्धारित पाठ्य-पुस्तक पढ़कर हासिल नहीं करते। जैसा कि NCF 2005 में पृष्ठ 38 पर

कहा गया है: "भाषा का शिक्षण मात्र भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षा भी वस्तुत: भाषा की कक्षा होती है। विषय सीखने का मतलब होता है तकनीकी शब्दावली सीखना, अवधारणाओं को समझना, और उनके बारे में आलोचनात्मक ढंग से चर्चा कर पाना और लिख पाना।"

लेकिन आपको किसी अवधारणा को पहले अपने दिमाग में निर्मित करना पड़ता है, उसके साथ 'सही' शब्दों को जोड़ना तो बाद में आता है। और यदि छात्र यही न समझ पाएँ कि चल क्या रहा है तो ज्ञान का यह निर्माण बाधित ही हो सकता है।

## निष्कर्ष

मेरा दृढ़ विश्वास है कि जितने विविध विषय आप पढ़ते हैं, आप उतने ही अधिक शब्दों के सम्पर्क में आते हैं और उन्हें इस्तेमाल करना सीखते हैं। विज्ञान की कक्षा में भी आप नए-नए शब्द और उनका उपयोग करना सीखते हैं। लेकिन यदि पाठ्य पुस्तक समझ से परे होगी, तो आप कुछ नहीं सीखेंगे - न शब्द, न अवधारणा। हमें उस तरह के लेखन की कोशिश करनी चाहिए जो लोकप्रिय (सर्व-सुलभ) विज्ञान लेखन में होता है, जहाँ बातें ऐसी भाषा में समझायी जाती हैं जिन्हें एक आम नागरिक समझ सके। ऐसा होगा तो शायद हमारे बच्चे विज्ञान व अन्य विषयों में भी आगे बढ़ सकेंगे।

---

**उमा सुधीर:** *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
**अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी:** *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित पत्रिका Language and Language Teaching, vol. 6 (2) अंक 12, जुलाई 2017 से लिया गया है।

**संदर्भ**

1. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कक्षा 6, एस.सी.ई.आर.टी. छत्तीसगढ़
2. एन.सी.ई.आर.टी. (2005)। नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.

# धोखेबाज़ तितलियाँ

संकेत राउत

छोटे कीटों की दुनिया अद्‌भुत होती है। न जाने कितने सारे लोगों ने कीटों के अध्ययन में अपना जीवन लगा दिया, फिर भी दुनिया के सबसे बड़े जीवसमूह में शुमार कीट वर्ग (class) के बारे में बहुत ही कम जानकारी हमारे पास होगी। कीट समूह में विविधता भी इतनी है कि दुनिया के सारे कीटों का अध्ययन करना भी लगभग नामुमकिन है। लेकिन इनमें से कुछ चुनिन्दा कीट वर्गों का काफी अध्ययन हो चुका है, जैसे कि तितली समूह।

तितली हमारी जीव-सृष्टि का नायाब और महत्वपूर्ण घटक है। डायनोसॉर के समय से तितलियाँ इस धरातल पर मण्डराती रही हैं। परागण की महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी निभाने वाली तितली का मानव जीवन के लिए महत्व हम नज़रन्दाज़ नहीं कर सकते। इस नाज़ुक और रंगीन जीव का जीवन भी बेहद दिलचस्प और रंगीन होता है।

हमें यह पता है कि जीव-सृष्टि के विकास में ज़िन्दा रहने की चुनौतियों का योगदान काफी अहम रहा है। इस धरातल पर ज़िन्दा रहने के लिए जो तरकीबें अपनाई जाती हैं वो कई बार हमें आश्चर्यचकित कर देती हैं। भीमकाय हाथी से लेकर नन्ही चींटी तक अलग-अलग जीव कई सारे दाव खेलकर अपना

अस्तित्व बनाए रखते हैं।

तितली के पास भी छद्मावरण (camouflage) और अखाद्य रस जैसे रासायनिक हथियार मौजूद होते हैं। मगर आज हम जिस हथियार की बात करेंगे, उससे काफी कम ही लोग वाकिफ होंगे। यह हथियार है नकल यानी मिमिक्री का। मिमिक्री अनुकूलन का एक विशेष तरीका माना जाता है। जीव जगत में नकल कई सारे रूपों में उभरकर आती है। नकल के तरीके मुख्यतः रक्षात्मक और आक्रमक माने जाते हैं और इनमें काफी विविधता भी पाई जाती है। और तो और सिर्फ पक्षी एवं तितलियाँ ही नहीं बल्कि पेड़-पौधे भी नकल कर लेते हैं। इस लेख में हम मुख्यतः तितली की बेट्सिअन और मुलेरियन मिमिक्री से रूबरू होंगे जिसमें तितली की कुछ प्रजातियाँ अन्य प्रजातियों की तितलियों के रंग धारण करके उनकी लगभग हुबहू नकल करती हैं। लेकिन तितली में इनके अलावा ब्रोवेरिअन और ऑटोमिमिक्री जैसे नकल के अन्य प्रारूप भी देखे गए हैं।

लेकिन ऐसे नकल करने की ज़रूरत भला तितली को क्यों होगी? तो इस सवाल का जवाब देने से पहले मैं एक और रोचक बात आपको बताना चाहूँगा।

## कुछ तितलियाँ ज़हरीली होती हैं

क्या? सच में? हाँ, तितली की कुछ प्रजातियाँ ज़हरीली, मतलब भक्षक के लिए अखाद्य मानी जाती हैं। ऐसी तितलियों का स्वाद बेहद घिनौना होता है। मिसाल के तौर पर अपने आस-पड़ोस में नज़र डालेंगे तो कॉमन रोज़ (*Pachliopta aristolochiae*), स्ट्राइप्ड टाइगर (*Danaus genutia*), प्लेन टाइगर (*Danaus chrysippus*), ब्लू टाइगर (*Tirumala limniace*) और कॉमन क्रो (*Euploea core*) जैसी कुछ तितलियों की प्रजातियाँ आप आसानी-से देख सकते हैं। बाग में या घास के मैदानों में और शहर में भी आप इन्हें देख सकते हैं। ज़हरीली तितली की बात सुनकर आपके दिमाग में शायद खलबली मची होगी, तो दिल की बढ़ी हुई धड़कन को शान्त करके पहले ज़हरीली तितलियों के बारे में थोड़ी जानकारी और लेते हैं। चलो, पता लगाते हैं कि ये तितलियाँ ज़हरीली कैसे बन जाती हैं।

## कहाँ से आता है तितली में ज़हर?

तितली की हर प्रजाति खास किस्म के पौधे पर अण्डे देती है जिसे तितली की उस प्रजाति का मेज़बान पौधा (होस्ट प्लांट) माना जाता है। अण्डों से बाहर आए तितली के कीटडिम्भ (लार्वा) मेज़बान पौधे की पत्तियाँ खाकर तेज़ी-से बढ़ते हैं। अब यह तो आप जानते ही होंगे कि वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रसायन पाए जाते

हैं। भोजन के साथ लार्वा के शरीर में ये रसायन प्रवेश पा जाते हैं और इन रसायनों के कुछ अंश वयस्क तितली के शरीर में भी बने रहते हैं। यदि किसी मेज़बान पौधे में अल्कलोइड जैसे रसायन मौजूद हों तो उस पौधे पर पले लार्वा से बनी तितली ज़हरीली या अखाद्य बन जाती है। ऐसी तितली का घिनौना स्वाद शिकारी को झकझोर देता है और भक्षक तुरन्त उसे झटककर फेंक देता है।

## क्या इनसे डरना चाहिए?

बिलकुल भी नहीं। क्योंकि तितली के अन्दर समाए ये रसायन, तितली को खाने के बाद उसके भक्षक पर असर करते हैं। ऐसी तितली को छूने से या उसे हाथ में पकड़ने से हमें कोई खतरा नहीं होगा, लेकिन हमारे स्पर्श से तितली के नाज़ुक पंखों तथा शरीर को हानि पहुँच सकती है। इसलिए तितली को कभी छूने की कोशिश नहीं करनी चाहिए और तितली के ज़हरीले होने का सम्बन्ध उसके अखाद्य स्वाद से है, यह ध्यान रखना चाहिए।

इन ज़हरीली तितलियों को न तेज़ गति-से उड़ने की ज़रूरत होती है, और न ही छुपने की। वे चटक रंगों से लैस होकर मन्द गति-से कम ऊँचाई पर उड़ती रहती हैं, बेहिचक अपने चमकदार पंख खोलकर आराम-से फूलों पर बैठती हैं। ज़हरीली तितली की पहचान का एक तरीका यह भी हो सकता है।

## चटक रंगों का महत्व

कुदरत चटक रंगों को खतरे की घण्टी के रूप में पेश करती है। चटक रंग के जीव काफी आसानी-से शिकारियों की नज़र में आ जाते हैं लेकिन खतरनाक हथियारों से लैस ये जीव चटक रंग ओढ़े बेखौफ रहते हैं। उन पर हमला करने का जोखिम बहुत ही कम भक्षक उठाते हैं।

तो अब हम वापस लौट आते हैं नकल पर... तितली द्वारा नकल करने के सम्बन्ध में हेनरी वॉल्टर बेट्स और फ्रिट्ज़ मुलर का कार्य बेहद अहम रहा है। तो नकल के इस किस्से को हम इन दोनों जीव विज्ञानियों द्वारा दी गई जानकारी के ज़रिए आगे बढ़ाते हैं।

## हेनरी वॉल्टर बेट्स का कार्य

हेनरी वॉल्टर बेट्स ब्राज़ील में अपने कार्य के दौरान संग्रहित तितलियों का निरीक्षण कर रहे थे। काफी बारीकी-से किए गए निरीक्षण के बाद उन्होंने यह पाया कि संग्रह की कुछ तितलियों के रंग और निशानियाँ एक कुल (family) की थीं तो उनकी संरचनात्मक विशेषताएँ (anatomical features) दूसरे कुल की तितलियों जैसी थीं। इसका मतलब यह था कि कुछ तितलियों ने अन्य कुल की तितलियों की बड़ी बारीकी-से नकल उतारी थी।

अब बेट्स बिलकुल हैरान रह गए कि कैसे एक नन्हे-से जीव ने अपनी संरचनात्मक विशेषताएँ कायम रखते हुए, बिलकुल एक अलग कुल की तितली के भेष को लगभग हूबहू धारण किया होगा। बेट्स ने इसे मिमिक्री का नाम दिया और इस पर और अधिक शोध कर अपने नतीजे सन् 1862 में सबसे साझा कर दिए।

अब यदि यह बदलाव आया है तो उसका कोई-न-कोई फायदा ये तितलियाँ ज़रूर उठा रही होंगी, अन्यथा इस नकल का कोई मतलब नहीं बनता था। एक अवलोकन यह भी था कि ज़्यादातर धीमी गति से उड़ने वाली और चटक रंगों से लैस तितलियों की नकल उतारी गई थी। इस दिशा में शोध करते हुए बेट्स ने पाया कि जिन तितलियों की नकल उतारी गई थी, उन तितलियों के भीतर कुछ अखाद्य पदार्थ मौजूद थे जिसके कारण शिकारी उन तितलियों से परहेज़ करते थे। यानी नकल उतारी गई तितलियों के चटक रंग अखाद्य या ज़हरीले होने की निशानी थी। और इसका फायदा कुछ बिना ज़हर वाली तितलियाँ उनकी नकल उतारकर लेती हैं। ऐसी धोखेबाज़

***कॉमन मोरमोन***

***चित्र-1:*** *कॉमन मोरमोन तितली की मादा, क्रिमसन रोज़ और कॉमन रोज़ की नकल करती है।*

***कॉमन रोज़***

***क्रिमसन रोज़***

कॉमन माइम

ब्लू टाइगर

**चित्र-2:** *कॉमन माइम, ब्लू टाइगर की नकल करती है।*

तितलियाँ ज़हरीली तितलियों के रंग और आदतों को ऐसे अपनाती हैं जैसे कि भेड़िये की खाल में भेड़।

इन नकलखोर तितलियों के लार्वा ज़हरीले रसायनों वाली वनस्पति को मुँह तक नहीं लगाते और शिकारी इन तितलियों को आराम-से खा भी सकते हैं, लेकिन उनपर छितरे हुए अखाद्य तितलियों के रंग शिकारियों को झाँसा देते हैं। बेशक, इस तरकीब का फायदा ये नकलखोर तितलियाँ खूब उठाती होगीं। बेट्स के इस कार्य के सम्मान में इस रूप-परिवर्तन को बेट्सिअन मिमिक्री नाम दिया गया।

एशिया महाद्वीप में एक-दूसरे की करीबी रिश्तेदार डेनाईनेस (Danaines) और यूप्लोइनेस (Euploines) कुल की तितलियों की पहचान प्रमुख मॉडल के रूप में की गई जिनकी सबसे ज़्यादा नकल की जाती है, और साथ में स्वेलॉ-टेल कुल की कुछ तितलियाँ भी इनमें जोड़ दी गईं। यह बात भी सामने आई कि मॉडल ग्रुप चुनिन्दा होते हैं और नकल करने वाले ज़्यादा।

अब बेट्सिअन मिमिक्री के कुछ उदाहरण भी देख लेते हैं। कॉमन मोरमोन (*Papilio polytes*) तितली की मादा, क्रिमसन रोज़ (*Atrophaneura hector*) और कॉमन रोज़ की नकल करती है। ग्रेट एग-फ्लाई (*Hypolimnas bolina*) तितली की मादा, कॉमन क्रो के और डेनेड एगफ्लाई (*Hypolimnas missipus*) की मादा, प्लेन टाइगर तितली के रंग ओढ़ लेती है। ये सारी तितलियाँ हमें अपने आसपास आसानी-से नज़र आ जाती हैं। कॉमन माइम (*Papili clytia*) की नर-मादा, ब्लू टाइगर और कॉमन क्रो के रूप में दिखाई देती है। लेकिन यह तितली इतने सामान्य रूप से हमें दिखाई नहीं देती। दी गई तस्वीरों की मदद से हम कॉमन माइम की नकल देख सकते हैं।

कॉमन माइम पेपिलिनिओडी (Papiliniodae) कुल की है, इसके छ: पैर आप आसानी-से देख सकते हैं

कॉमन माइम

कॉमन क्रो

***चित्र-3:*** *कॉमन माइम के छः पैर आसानी-से देखे जा सकते हैं लेकिन कॉमन क्रो के सिर्फ चार पैर ही दिखाई दे रहे हैं।*

लेकिन कॉमन क्रो के सिर्फ चार पैर ही दिखाई दे रहे हैं (चित्र-3)। हम जैसा पहले भी पढ़ चुके हैं, नकल उतारने के बावजूद संरचनात्मक विशेषताएँ कायम रहती हैं। कॉमन क्रो और ब्लू टाइगर, दोनों जिस निम्फेलिडी (Nymphalidae) कुल में आते हैं, इस कुल की तितलियों को चौपाई तितलियाँ कहा जाता है। इस कुल की तितलियों के आगे के दो पैर इतने छोटे हो गए हैं कि वे मुश्किल से ही दिखाई देते हैं।

एक और बात पर भी गौर फरमाना होगा कि कॉमन मोरमॉन जिन दो तितलियों (क्रिमसन रोज़ और कॉमन रोज़) की नकल करती है, वे उसी के पेपिलिनिओडी कुल की हैं। डेनेड एगफ्लाई तितली की मादा प्लेन टाइगर की नकल करती है, ये दोनों एक ही निम्फेलिडी कुल की तितलियाँ हैं। लेकिन कॉमन माइम पेपिलिनिओडी कुल की तितली है जो निम्फेलिडी कुल की तितलियों ब्लू टाइगर और कॉमन क्रो की नकल करती है। यानी

*ब्लू टाइगर*

*ब्राउन किंग क्रो*

*डार्क ब्लू टाइगर*

*ग्लासी ब्लू टाइगर*

***चित्र-4:*** *विभिन्न अखाद्य तितलियों की मुलेरियन मिमिक्री को हम तस्वीरों के ज़रिए देख सकते हैं।*

तितलियाँ अपने कुल की तितलियों के अलावा अन्य कुल की तितलियों की भी नकल उतारती हैं।

## फ्रिट्ज़ मुलर का कार्य

बेट्स का शोध प्रसिद्ध होने के कुछ ही साल बाद 1879 में मुलर का ध्यान इस बात पर गया कि कुछ अखाद्य तितलियाँ अन्य अखाद्य तितलियों से बेहद मिलती-जुलती दिखाई दे रही हैं। अलग-अलग अखाद्य प्रजाति के नर और मादाओं ने लगभग एक-जैसे रंग धारण किए हैं। इस नकल को मुलेरियन मिमिक्री (Mullerian Mimicry) के नाम से जाना जाता है।

मुलेरियन मिमिक्री के उदाहरण में डार्क ब्लू टाइगर (*Tirumala septentrionis*), ग्लासी ब्लू टाइगर (*Tirumala aglea*), ब्लू टाइगर (*Tirumala limniace*), नीलगिरी टाइगर (*Parantica nilgiriensis*) के रंग-रूप बहुत हद तक एक-दूसरे से मिलते-जुलते दिखाई देते हैं जो कि

Nymphalidae कुल की तितलियाँ हैं। इसी कुल के कॉमन क्रो (*Euploea core*), ब्राउन किंग (*Euploea klugii*) और डबल-ब्रांडड क्रो (*Euploea sylvester*) भी इसके उदाहरण हैं। पेपिलिनिओडी कुल की कॉमन रोज़, क्रिमसन रोज़ और मालाबार रोज़ (*Pachiliopta pandiyana*) तितलियों को भी हम उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं जो एक-दूसरे की तरह दिखाई देती हैं। इन सभी तितलियों को अखाद्य माना जाता है।

हमने नकल के कुछ उदाहरण देखे, अब नकल से तितली को क्या लाभ हो सकता है, इस पर थोड़ी बात कर लेते हैं।

## नकल और शिकारी

बेट्सिअन मिमिक्री का लाभ बिना ज़हरवाली तितलियों को मिलने का मुख्य कारण अखाद्य तितलियों की अधिक संख्या का होना हो सकता है। जिस तितली की नकल की है, उसकी संख्या ज़्यादा हो तो नौसिखिए शिकारियों द्वारा ज़हरीली तितलियों पर ज़्यादा-से-ज़्यादा हमले, नकल करने वाले को फायदा देंगे। मुलेरियन मिमिक्री में भी दो या उससे ज़्यादा अखाद्य प्रजातियों में हर प्रजाति को एक ही रंग के पैटर्न का फायदा होता है। इस स्थिति में यह होता होगा कि किसी भी प्रजाति की तितली पर शिकारी द्वारा हमला होने पर उस प्रजाति के अखाद्य होने का पता शिकारी को तुरन्त हो जाएगा। शिकारी उस तितली के रंगों के पैटर्न को ध्यान में रखकर, उस पर दुबारा हमला करने से परहेज़ करेगा। मुलेरियन मिमिक्री में नकल का फायदा उन तितलियों को बेशक होता होगा जो संख्या में कम होती हैं क्योंकि इस स्थिति में उन तितलियों पर हमला होने की सम्भावना काफी बढ़ जाती है जो रंग में समान लेकिन संख्या में अधिक होती हैं और नकल करने वाली प्रजाति संख्या में कम होने के बावजूद अपना वजूद बनाए रख पाती हैं। इसे नकारात्मक आवृत्ति पर निर्भर चयन (Negative frequency dependent selection) कहा जाता है।

नौसिखिए पक्षियों का सीखने का तरीका धोखेबाज़ तितलियों के पक्ष में जाता है। अधिकतर पक्षी खाने के लिए रंगों के पैटर्न से खाद्य और अखाद्य चीज़ों को याद रखते हैं। जिन रंगों की तितली के स्वाद ने शिकारी को एक बार झकझोर दिया हो, उस रंग से मिलती-जुलती किसी भी चीज़ से शिकारी दूर रहना चाहेगा और हो सकता है कि अपने पहले अनुभव की दोबारा-से जाँच करने में शिकारी काफी ज़्यादा समय भी ले। लेकिन नकल कर रही धोखेबाज़ तितलियों की संख्या अधिक होने से बाज़ी पलट सकती है। तब पेट भरने के लिए शिकारी कुछ अखाद्य तितलियाँ खाकर मुँह गंदा करने का खतरा उठा सकता है।

एक और बात जो बेट्सिअन मिमिक्री में उभरकर आती है, वो यह है कि नकल ज़्यादातर मादा ही करती है। क्यों? इसका एक जवाब यह हो सकता है कि समागम के बाद नर का काम लगभग खत्म हो जाता है लेकिन मादा तितली के शरीर में अण्डे होते हैं। तो अण्डों से भरा भारी शरीर लेकर उड़ना और फिर मेज़बान पौधे ढूँढ़कर अण्डे देना आसान काम तो नहीं होगा। इसमें ज़रूर नकल का फायदा मादा को मिलता होगा। लेकिन वहीं दूसरी ओर शिकारियों को झाँसा देने वाले आकर्षक नर मादा के सामने समागम के लिए योग्य उम्मीदवार होने के दावे की ज़ोरदार पेशकश कर सकते हैं।

तो तितलियों की दुनिया जितनी आकर्षक लगती है उतनी ही वह पेचीदा भी है। (शिकारियों के लिए) खाने योग्य तितलियों का दायरा भी काफी बड़ा है और उसमें भी एक ही प्रजाति के अन्दर काफी सारी विविधता देखी जा सकती है। वहीं दूसरी ओर तितलियों को बेट्सिअन मिमिक्री और मुलेरियन मिमिक्री में बाँटना भी आसान काम नहीं है। एक ही मॉडल तितली के बेट्सिअन मिमिक्री और मुलेरियन मिमिक्री के भी उदाहरण हैं। तितली और पतंगे के बीच में भी नकल के कुछ दिलचस्प उदाहरण मिले हैं। नकल आवाज़ की भी होती है। बेट्सिअन मिमिक्री और मुलेरियन मिमिक्री के अलावा भी नकल के अन्य प्रकार हैं। तो अगर आपको लग रहा है कि छलकपट और नकल का यह किस्सा यहीं तक सीमित होगा तो वह एक बड़ी भूल होगी।

---

**संकेत राउत:** आप वन्यजीव प्रेमी हैं। जंगली जानवरों के व्यवहार के बारे में विश्लेषण करने और पढ़ने में आनन्द आता है। पक्षी और तितलियाँ रुचि का मुख्य क्षेत्र हैं। स्वैच्छिक रूप से अनेक वन्यजीव अध्ययन में भाग ले चुके हैं। लगभग दो साल से *एकलव्य* में विज्ञान शिक्षण पर काम कर रहे हैं।

वन्य-जीव विशेषज्ञ प्रवीन काव्ले को उनके द्वारा दी गई महत्वपूर्ण मदद के लिए शुक्रिया।

**सन्दर्भ सूची:**

1. www.learnaboutbutterflies.com/Survival%Strategies%204.htm
2. news.ncbs.res.in/archivednews/story/butterfly-mimicry-through-eyes-bird-predators
3. https://www.sciencedaily.com/releases/2015/11/151105102943.htm
4. https://www.advancedsciencenews.com/mimicry-butterflies-muse-palette-artist/
5. https://bmcbiol.biomedcentral.com/articles/10.1186/1741-7007-8-122
6. www.mimeticbutterflies.org/mimicrybutterflies.php
7. Book: A Guide to the Butterflies of Western Ghats (India) Milind Bhakare, Hemant Ogale

# ज़मीनी हकीकत

## *परिधि और क्षेत्रफल में सम्बन्ध*

**विवेक मेहता**

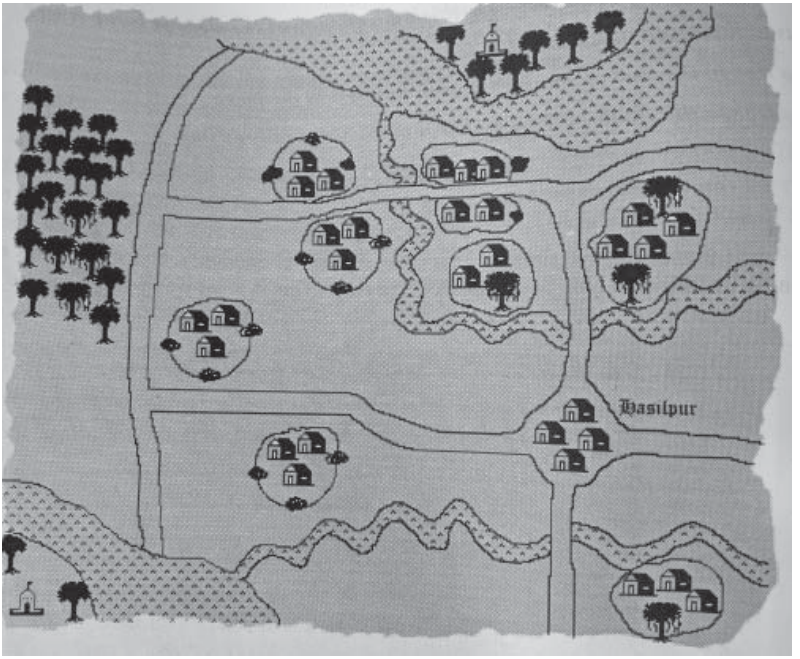


ठीक से याद नहीं लेकिन स्कूल का ही कोई साल था। कहीं से खबर मिली कि चाँद पर प्लॉट बेचे जा रहे हैं। पता नहीं कितनी सही थी, लेकिन हम दोस्तों ने बड़े मज़े लिए थे इस खबर के कि बताओ भला कौन बेच रहा है चाँद पर प्लॉट, और कौन है जो खरीद रहा है।

वैसे चाँद पर प्लॉट बेचने की बात उस समय और आज भी कितनी ही मज़ाकिया लगे, पृथ्वी पर ज़मीन बेचना और खरीदना बेहद ही सीरियस बिज़निस है। यह बात और है कि शायद किसी और ग्रह के या धरती पर ही किसी अलग तरह की व्यवस्था के बाशिन्दों को हमारी यह व्यवस्था मज़ाकिया लगे।

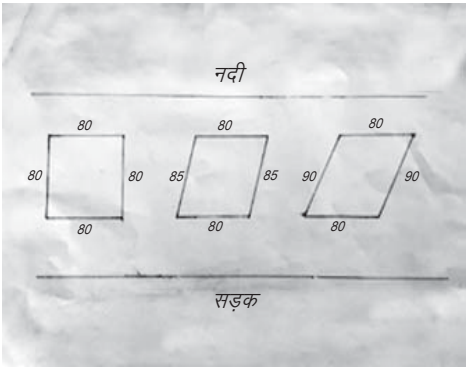


*चित्र:1*

मैं इन दिनों जिस यूनिवर्सिटी कैम्पस में पढ़ाता व रहता हूँ, उसके बनने के पहले कैंपस व आसपास की ज़मीन पर लोग खेती किया करते थे। लेकिन धीरे-धीरे इन पच्चीस सालों में ज़मीन का इस्तेमाल खेती से इतर कई और कारणों में होने लगा है। दुकानें (स्थाई-अस्थाई), मार्केट, ढाबे, नर्सरी, मकान (कच्चे-पक्के), स्कूल, गलियाँ-सड़कें, मन्दिर-मस्जिद-चर्च, कब्रिस्तान इत्यादि में। इसके अलावा कई लोगों ने ज़मीन के बड़े-बड़े प्लॉट खरीदकर, बाउंड्री-वॉल बनवाकर यूँ ही खाली छोड़ रखे हैं।

इन सबके चलते देखते-ही-देखते ज़मीन की कीमतें काफी बढ़ गईं। इस उछाल का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि यूनिवर्सिटी गेट से मात्र एक-डेढ़ कि.मी. की दूरी पर एक बिल्डर 75 लाख से लेकर 95 लाख तक के विला बनाकर बेच रहा है।

यूनिवर्सिटी के आसपास के गाँवों के लोग अक्सर ही ज़मीन खरीदने-बेचने की बात करते मिल जाते हैं। अभी कुछ ही दिन पहले मेरी गली में फूल-पौधों का ध्यान रखने वाले साथी प्रदीप और मेरे घर पर दूध देने वाले साथी पूबेरून मेरे घर पर आपस में बतिया रहे थे। मैं उनकी बातें सुन रहा था। प्रदीप कह रहे थे कि वे यूनिवर्सिटी के पास आकर रहना चाहते हैं। दूर से आकर काम करने में दिक्कत होती है और काम भी कम है। ज़मीन तो बहुत महंगी है, इसीलिए किराए का घर ही ढूँढ़ रहे हैं। उनकी बातें सुनकर मुझे अचानक से एक ख्याल आया और मैं एक कागज़ पर एक चित्र बनाकर उन दोनों के पास ले गया। वो चित्र कुछ ऐसा था (चित्र 1)।

इस चित्र में मैंने दो समानान्तर किनारों (एक ओर नदी और दूसरी ओर सड़क) के बीच में तीन प्लॉट बनाए। तीनों प्लॉट के चारों साइडों का माप भी दर्शा दिया। मेरी मंशा थी कि मैं उन लोगों से जो कि ज़मीन खरीदने-बेचने का व्यवहारिक ज्ञान रखते हैं, उनकी समझ इन प्लॉटों के बारे में, खास तौर पर परिधि व क्षेत्रफल से जुड़ी हुई, जानूँ।

इन दो साथियों के अलावा मैंने इस चित्र पर अन्य कई लोगों से, दो या ज़्यादा के समूहों में, बात की।

इनमें हार्डवेयर, किराने की दुकान चलाने वाले साथी, तकनीकी संस्थान में वर्कशॉप व लैब सम्भालने वाले साथी इत्यादि शामिल थे। उन लोगों की आपसी चर्चा में मुझे दो मुख्य बिन्दु मिले।

- पहला तो ये कि दिए गए विकल्पों में से लगभग सभी एक वर्गाकार प्लॉट को पसन्द करते हैं। वजह, बाकी दोनों प्लॉट में घर बनाने से कुछ ज़मीन बेकार जाएगी।
- एक दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मुझे समझ में आई कि लोग प्लॉट के क्षेत्रफल को लेकर दुविधा में रहते हैं। उनकी यह दुविधा उनके द्वारा अपनाए गए दो तरीकों से परिलक्षित होती है –

  (1) वे किसी वर्ग या आयत की तरह समचतुर्भुज या समानान्तर चतुर्भुज का क्षेत्रफल भी किनारों की माप के गुणनफल के बराबर निकालते हैं, व

  (2) कई दफे वे क्षेत्रफल व परिमिति के बीच उलझ जाते हैं। वे परिमिति को क्षेत्रफल के माप के रूप में पेश करते हैं। अब इसके चलते होता यह है कि चित्र में दिखलाए गए तीन प्लॉटों में से जिस चतुर्भुज की परिमिति सबसे ज़्यादा है, उसका क्षेत्रफल साथियों के मुताबिक सबसे ज़्यादा निकलता है।

वैसे क्षेत्रफल और परिमिति के बीच का यह हेर-फेर कोई नई बात नहीं। आज से

**बॉक्स-1**

उदाहरण के तौर पर अगर ऐसे इन तीन आयतों की तुलना की जाए जिनकी लम्बाई व चौड़ाई नीचे दिए गए चित्र में दर्शाई गई है, तो हम पाते हैं कि

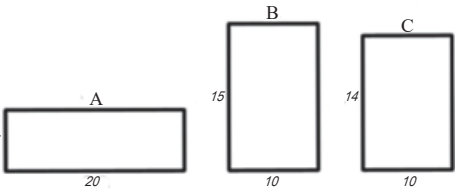


- आयत A व B, दोनों की परिमिति समान है, लेकिन उनका क्षेत्रफल अलग-अलग है;
- आयत C की परिमिति अन्य आयतों की तुलना में कम है, लेकिन उसका क्षेत्रफल जहाँ आयत A से ज़्यादा है परन्तु आयत B से कम।

तकरीबन 1700 साल पहले यूक्लिड की लिखी किताब *एलीमेंटस* पर अपनी टिप्पणी देते हुए यूनानी दार्शनिक प्रोक्लोस एक चेतावनी-सी देते हुए लिखते हैं:

हम अक्सर ही, ज़मीन आवंटन के दौरान, क्षेत्रफल को परिमिति के बराबर मान लेने की गलती को पकड़ने में चूक जाते हैं; नतीजतन ऐसे कई लोग हैं जिन्होंने छोटे हिस्से की तुलना में ज़मीन के बड़े

## बॉक्स 2

मान लेते हैं कि दी गई परिमिति P है। ऐसे में किसी आयत के लिए जिसकी लम्बाई व चौड़ाई क्रमश: x व y हो तो,

$$P = 2x + 2y \quad (1)$$

या फिर

$$x = \frac{P - 2y}{2} \quad (2)$$

साथ ही आयत का क्षेत्रफल A होगा लम्बाई व चौड़ाई के गुणनफल के बराबर

$$A = xy = \frac{(P - 2y)}{2} y$$

जिसे यूँ भी लिखा जा सकता है-

$$A = \frac{1}{2}Py - y^2 = \frac{P^2}{16} - \frac{P^2}{16} + \frac{1}{2}Py - y^2 = \frac{P^2}{16} - \left(y - \frac{P}{4}\right)^2$$

इस बिन्दु पर आकर अब हमें सोचना होगा कि $A = P^2/16 - (y-P/4)^2$ के मायने क्या हुए। इस समीकरण में क्षेत्रफल को दो धनात्मक संख्याओं के अन्तर के रूप में दर्शाया गया है। $P^2/16$ तो हमेशा ही धनात्मक होगी। वहीं, चाहे चौड़ाई y दी गई परिमिति के चौथाई P/4 से बड़ी हो या छोटी, $(y-P/4)^2$ हमेशा ही धनात्मक होगी। ऐसे में कहा जा सकता है कि क्षेत्रफल का मान ज़्यादा-से-ज़्यादा $P^2/16$ के बराबर हो सकता है। गणितीय तरीके से लिख सकते हैं कि

$$A = \frac{P^2}{16} - \left(y - \frac{P}{4}\right)^2 \leq \frac{P^2}{16}$$

साफ ज़ाहिर है कि क्षेत्रफल अपने अधिकतम मान पर तब होगा जब चौड़ाई y दी गई परिमिति के चौथाई P/4 के बराबर हो यानी कि $y = P/4$.

समीकरण (2) में y का यह मान रखने पर हमें $x = P/4$ मिलेगा। लम्बाई भी परिमिति के चौथाई के बराबर। यानी कि एक दी गई परिमिति के लिए वर्ग वो आयत होगा जिसका क्षेत्रफल अधिकतम होगा।

## बॉक्स 3

*किसी दिए गए क्षेत्रफल के लिए ऐसा कौन-सा आयत होगा जिसकी परिमिति सबसे कम हो?*

इस सवाल का जवाब निकालने के लिए हम दो संख्याओं के समान्तर माध्य (arithmetic mean) व गुणोत्तर माध्य (geometric mean) की अवधारणा की मदद लेंगे। दो संख्याओं x व y का समान्तर माध्य (x+y)/2 के बराबर व गुणोत्तर माध्य $\sqrt{xy}$ के बराबर होता है। किसी भी दो संख्याओं के लिए यह सिद्ध करना काफी आसान है कि उन दो संख्याओं के समान्तर माध्य का न्यूनतम मान गुणोत्तर माध्य के बराबर होगा।

अगर हम यह दर्शा पाएँ कि दो संख्याओं के समान्तर माध्य से गुणोत्तर माध्य को घटाने पर मिलने वाली राशि हमेशा धनात्मक (शून्य या शून्य से बड़ी) होगी, तो हम यह सिद्ध कर सकते हैं।

मान लीजिए कि

$$D = \frac{x+y}{2} - \sqrt{xy}$$

हमें सिद्ध करना है कि अन्तर D हमेशा शून्य या शून्य से ज़्यादा होगा। हम लिख सकते हैं कि

$$D = \frac{x+y-2\sqrt{xy}}{2} = \frac{(\sqrt{x})^2 + (\sqrt{y})^2 - 2\sqrt{xy}}{2} = \frac{(\sqrt{x}-\sqrt{y})^2}{2}$$

(करके देखिए। संकेत के तौर पर यह बतला दूँ कि कोशिश कीजिए यह दर्शाने की कि अगर हम दो संख्याओं के समान्तर माध्य से गुणोत्तर माध्य को घटाएँ तो उत्तर हमेशा शून्य से ज़्यादा, व केवल उस एक विशेष परिस्थिति में शून्य के बराबर होगा जब दोनों संख्याएँ बराबर हों)। गणितीय तौर पर हम लिख सकते हैं कि

$$\frac{x+y}{2} \geq \sqrt{xy}$$

अब ऐसे में अगर x व y किसी आयत की लम्बाई व चौड़ाई को दर्शाएँ जिसका क्षेत्रफल A व परिमिति P हो तो हम लिख सकते हैं कि

$$\frac{P}{4} \geq \sqrt{A}$$

साफ ज़ाहिर है कि एक आयत के लिए, जिसका क्षेत्रफल A दिया गया है, परिमिति की लम्बाई $4\sqrt{A}$ से ज़्यादा ही होगी, व अपने न्यूनतम मान $4\sqrt{A}$ पर तब होगी जब x=y हो, यानी कि आयत एक वर्ग हो।

हिस्से पर कब्ज़ा पा लिया है, वो भी इस 'न्यायसंगत' आधार पर कि सौदा बराबरी का था क्योंकि दोनों हिस्सों की परिमिति समान थी।

साफ ज़ाहिर है कि एक बराबर परिमिति के दो क्षेत्रफल भी बराबर हों, ये कतई ज़रूरी नहीं। और तो और, एक कम परिमिति वाला क्षेत्रफल किसी ज़्यादा परिमिति वाले क्षेत्रफल से ज़्यादा भी हो सकता है।

ईसा से 100 से ज़्यादा वर्ष पूर्व के यूनान के इतिहासकार पोलीबियस अपनी प्रसिद्ध इतिहास की चौथी पुस्तिका में लिखते हैं:

ज़्यादातर लोग शहरों के साईज़ का अन्दाज़ा उसकी परिमिति से लगाते हैं। ऐसे में अगर कोई उन से कहे कि मेगेलोपोलिस की परिमिति 50 स्टेड्स[1] (लगभग पाँच मील) और स्पार्टा की 48 है, लेकिन स्पार्टा मेगेलोपोलिस का लगभग दोगुना है, तो वे अचम्भित रह जाते हैं।

एक ऐसे माहौल में जब दार्शनिक व इतिहासकार क्षेत्रफल और परिमिति की समस्या को देख-समझ पा रहे थे, तब गणितज्ञ भला इस सवाल से कैसे बचते। गणितज्ञ भी क्षेत्रफल, परिमिति व आयतन से जुड़े तमाम सवालों पर सोच रहे थे और हल करने की कोशिश में लगे थे।

उनमें से एक सवाल जो कि सीधे-सीधे किसी आयत की परिमिति व क्षेत्रफल से जुड़ा हुआ था वो था कि किसी दी गई परिमिति के लिए वह कौन-सा आयत होगा जिसका क्षेत्रफल सबसे ज़्यादा होगा? उदाहरण के लिए बॉक्स-1 में दिखलाए गए आयत A व B की परिमिति 50 है, लेकिन क्षेत्रफल अलग-अलग है। तो सवाल बनता है कि 50 परिमिति का ऐसा कौन-सा आयत होगा जिसका क्षेत्रफल सबसे ज़्यादा हो?[2]

इस सवाल का एक जुड़वाँ भाई भी है। जुड़वाँ इसलिए कि दोनों सवालों का उत्तर एक ही है। वो जुड़वाँ सवाल यह है कि किसी दिए गए क्षेत्रफल के लिए ऐसा कौन-सा आयत होगा जिसकी परिमिति सबसे कम हो?

गौर कीजिए कि ये दोनों ही सवाल किसी राशि के उच्चतम या निम्नतम मान से जुड़े हुए हैं। आधुनिक गणित के छात्र ऐसे सवालों को हल करने के लिए अवकलन गणित (Differential calculus) का उपयोग करते हैं। लेकिन ऐसे सवालों में अवकलन गणित का उपयोग तो सत्रहवीं शताब्दी के बाद की बात है। और हम बात कर रहे हैं ईसा पूर्व की।

---

*[1] यूनान में दूरी मापने की एक पुरातन इकाई।*

*[2] भारतीय सन्दर्भ में भी इस तरह के सवालों के जवाब तलाशने के सुबूत मिलते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार शुल्ब-सूत्रों में ऐसी अग्निवेदियाँ बनाने के नियम बतलाए गए हैं जिनका क्षेत्रफल तो समान हो, लेकिन परिमितियाँ अलग-अलग।*

बीजगणित (Algebra) जिसका इतिहास ईसा से भी पुराना है, का इस्तेमाल कर हम इस सवाल का जवाब निकाल सकते हैं कि किसी दी गई परिमिति के लिए वह कौन-सा आयत होगा जिसका क्षेत्रफल सबसे ज़्यादा हो (देखें बॉक्स 2)। वैसे बॉक्स देखने से पहले आप शायद खुद एक कोशिश करना चाहें जवाब निकालने की।

बॉक्स 2 में हमने देखा कि एक वर्ग अपने आप में इस मायने में भी खास है कि एक बराबर परिमिति के सभी आयतों में वर्ग का क्षेत्रफल अधिकतम होता है। अब आते हैं जुड़वे सवाल पर कि किसी दिए गए क्षेत्रफल के लिए ऐसा कौन-सा आयत होगा जिसकी परिमिति सबसे कम हो? क्या इस सवाल का जवाब बिना अवकलन गणित का इस्तेमाल किए निकाल सकते हैं? (देखें बॉक्स 3)। जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि इस सवाल का जवाब भी वर्ग ही होगा। लेकिन अगर हम सीधी रेखाओं का मोह त्याग दें तो क्या हम वर्ग से बेहतर भी कर सकते हैं? उदाहरण के लिए, एक दी गई परिमिति के लिए किसी वर्ग व वृत्त में से वृत्त का क्षेत्रफल ज़्यादा होता है। क्या आप ये सिद्ध कर सकते हैं?

**विवेक कुमार मेहता:** आई.आई.टी. कानपुर से मेकेनिकल इंजिनीयरिंग में पीएच.डी. की है एवं तेजपुर विश्वविद्यालय, असम में पढ़ा रहे हैं।

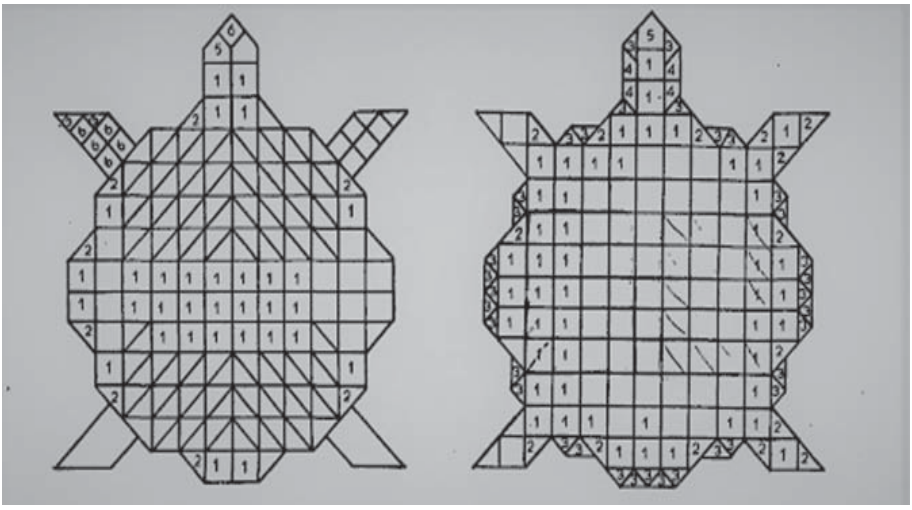

# ज़िद्दी सवाल और विरोधाभास

शेषागिरी केएम राव

"शायद सबसे बड़ा विरोधाभास तो यही है कि गणित में विरोधाभास होते हैं।"
- एडवर्ड कैसनर

क्या आपने कभी कोनिग्सबर्ग के सात पुलों के बारे में, चार रंगों की समस्या के बारे में, हज्जाम विरोधाभास के बारे में या फर्मा के अन्तिम प्रमेय के बारे में सुना है? यदि नहीं सुना है, तो मैं आपको बताना चाहूँगा कि ये गणित के सबसे दिलचस्प और पेचीदा सवालों में से हैं जिन्होंने कई पीढ़ियों के सर्वोत्तम दिमागों को, और कभी-कभी तो सैकड़ों वर्षों तक छकाया है! इन सवालों को हल करते-करते गणितज्ञों ने विषय की सर्वथा नवीन शाखाओं का आविष्कार किया है। इन आविष्कारों ने फिर गणितीय खोजबीन को आगे बढ़ाया है।

चन्ना ने हमें अतीत की इन पड़तालों की दिलकश कहानियाँ सुनाईं। मुझे वे कहानियाँ आज तक याद हैं। मैंने यथासम्भव बढ़िया ढंग से ये कहानियाँ अपने छात्रों को सुनाईं। मैं अक्सर हैरान रह जाता हूँ कि इन्हें हमारे पाठ्यक्रम में शामिल क्यों नहीं किया गया है। लगता तो ऐसा है कि पाठ्यक्रम की रचना ही हमारे स्कूली जीवन को नीरस बनाने के लिए की गई है।

हमारे शिक्षक के नाते, चन्ना चाहते थे कि हमें उस प्रक्रिया की झलक मिले जिसके माध्यम से वास्तव में गणित का सृजन होता है। इसलिए उन्होंने ऐसे कुछ प्रमुख सवाल हमारे साथ साझा किए थे, जिन्होंने इस विषय के विकास में योगदान दिया है। मुझे इनमें से चार याद हैं और मैं उन्हें आपके सामने पेश करना चाहूँगा। यकीन मानिए, एक क्षण भी उबाऊ नहीं होगा।

सबसे पहले कोनिग्सबर्ग के सात पुल - यह कहानी तो बतानी ही होगी।

## कोनिग्सबर्ग के सात पुल

मुझे पक्का याद नहीं कि यह किस कक्षा की बात है। शायद नौंवी या दसवीं की बात होगी जब हम मैट्रिक्स (आव्यूह) का विचार सीखने ही वाले थे। चन्ना ने बात की शुरुआत आव्यूह की परिभाषा ("आव्यूह संख्याओं की एक क्षितिज व उर्ध्वाधर व्यवस्थित सारणी होती है") देकर और यह

बताकर नहीं की थी कि "इनको जोड़ने व गुणा करने के नियम होते हैं।" जब यह नहीं किया तो पाठ्यपुस्तक के सम्बन्धित उबाऊ सवाल की तो बात ही नहीं आई। चन्ना ने तो कुछ एकदम अलग ही किया था। उन्हें तो इस विचार की जड़ तक जाना था और इस खोजबीन के रोमांच में अपने छात्रों को शामिल करना था। और इस तरह से हमें 300 साल पुरानी 'कोनिग्सबर्ग के सात पुल' पहेली की दावत मिली।

मुझे याद है हमने दो पीरियड तो इस पहेली की चर्चा करते बिताए होंगे, जो रोज़मर्रा के जीवन से उभरी थी। इसने ग्राफ सिद्धान्त जैसे गणित के नए क्षेत्रों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। विज्ञान व इंजीनियरिंग में ग्राफ सिद्धान्त का काफी उपयोग होता है। इससे जुड़ा आव्यूहों (matrices) का विचार है जिनका उपयोग जटिल दृश्य प्रस्तुतीकरण को सरलीकृत करने में किया जाता है। आव्यूह क्वांटम मेकेनिक्स में भी महत्वपूर्ण हैं। क्वांटम मेकेनिक्स भौतिकी की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध उप-परमाणविक विश्व के रहस्यमयी कामकाज से है। दरअसल, 'मैट्रिक्स मेकेनिक्स' नामक कोई चीज़ भी होती है।

वैसे मैं नहीं जानता कि आव्यूह का विषय हमारे स्कूल पाठ्यक्रम में कैसे स्थान पा गया था, लेकिन मुझे खुशी है कि इसे स्थान मिला। आखिर इसी की बदौलत तो हमें यह अद्भुत कहानी सुनने को मिली।

सात पुल की पहेली 1254 में प्रशिया स्थित कस्बे कोनिग्सबर्ग में उपजी थी। आजकल यह रूस में कालिनिनग्राद है। कोनिग्सबर्ग कस्बा चार छोटे-छोटे टापुओं से बना था। ये टापू एक-दूसरे से और मुख्य भूमि से सात पुलों के माध्यम से जुड़े थे। ये पुल प्रेजेल नदी पर बने थे जो कोनिग्सबर्ग में से होकर गुज़रती थी। इन सात पुलों (आज इनमें से कोई भी अस्तित्व में नहीं है) को नाम दिए गए थे: ब्लैकस्मिथ, कनेक्टिंग, ग्रीन, मर्चेंट, वुडन, हाई और हनी।

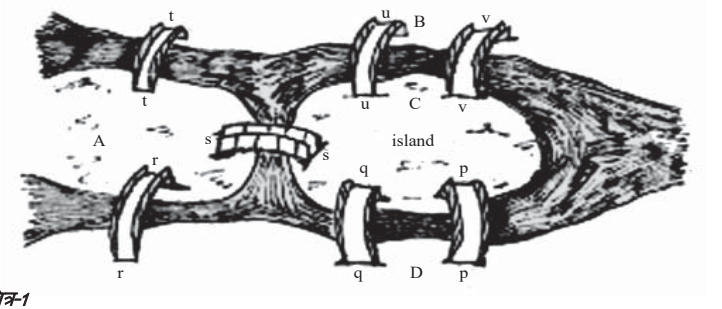


*चित्र-1*

लोककथा के मुताबिक चुनौती यह थी कि कोनिग्सबर्ग शहर का चक्कर इस तरह लगाया जाए कि आप प्रत्येक पुल पर से एक ही बार गुज़रें और शुरुआती बिन्दु पर लौट आएँ। क्यों न आप चित्र-1 में दिए गए पुलों के चित्र पर ऐसा रास्ता बनाकर देख लें? 1736 में सेंट पीटर्सबर्ग एकेडमी के निमंत्रण पर, लिओनहार्ड ओइलर ने दिखा दिया था कि अपने कदमों पर लौटे बगैर सातों पुलों को पार करना असम्भव है। उन्होंने इस तरह के सवाल सुलझाने के लिए एक कसौटी भी प्रस्तुत की थी। चूँकि वह कसौटी कोनिग्सबर्ग पहेली पर लागू नहीं होती, इसलिए उस पहेली का कोई हल नहीं है। इससे पहले कि हम थोड़ी और चर्चा करें, चन्द मिनट लेकर ओइलर द्वारा बनाए गए इस पहेली के रेखाचित्र (चित्र-2) पर गौर कीजिए।

ओइलर ने किया यह था: पुलों के संजाल को उन्होंने सरल ग्राफ का रूप दे दिया था, जैसा कि चित्र-3 में दर्शाया गया है। इसमें चार शीर्ष या मार्गसंगम हैं (A, B, C और D) तथा सात किनारे या मार्ग (t, s, r, p, q, u और v) हैं।

यदि आप ध्यान से देखेंगे तो यह ग्राफ पुलों के पहले चित्रण (चित्र-1) से मेल खाता है। दरअसल, यह यथार्थ विश्व की इस पहेली की ग्राफीय प्रस्तुती है।

अब सवाल यह है: क्या कोई ऐसा रास्ता सम्भव है, जिस पर चलकर प्रत्येक रेखा पर से मात्र एक बार गुज़रेंगे और लौटकर शुरुआती बिन्दु पर आ जाएँगे - यानी क्या आप एक बन्द परिभ्रमण कर सकते हैं? करके देखिए।

इस तरह का ग्राफ किसी परिघटना (यहाँ एक यथार्थ परिघटना यानी कोनिग्सबर्ग पुल) का दृश्य निरूपण है। इसे एक आव्यूह के रूप में भी दर्शाया जा सकता है, जो संख्याओं की एक जमावट होती है। जब ग्राफ जटिल से जटिल होने लगते हैं, तब आव्यूह परिघटनाओं के प्रस्तुतीकरण, उनमें हेरफेर करने और उनका अध्ययन करने के कारगर औज़ार साबित होते हैं, खास तौर से जब आप इस काम को कम्प्यूटर की मदद से करें।

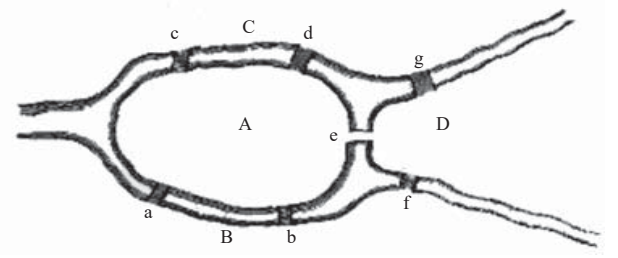


*चित्र-2*

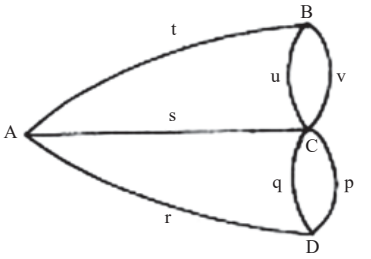


*चित्र-3*

कोनिग्सबर्ग पहेली को एक आसन्नता आव्यूह (एडजेसेंसी मैट्रिक्स) के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह चित्र-4 जैसा दिखता है। इसमें यह सूचना होती है कि हर शिरोबिन्दु (vertex) अन्य शिरोबिन्दुओं से किस तरह जुड़ा है।

आप शायद सोच रहे होंगे कि आव्यूह में हमें 0, 1 और 2 कैसे मिले। रेखाचित्र में किसी बिन्दु A से उसी बिन्दु तक पहुँचने वाले मार्गों की संख्या 0 है। बिन्दु A से बिन्दु B को जोड़ने वाले मार्गों की संख्या 1 है और बिन्दु B को बिन्दु C से जोड़ने वाले मार्गों की संख्या 2 है। यही बात शेष मार्गों पर भी लागू होती है (चित्र-3)।

कभी-कभी रेखाचित्र में दिख रहे शिरोबिन्दुओं के गुणधर्मों के लिए हम 'डिग्री' शब्द का उपयोग भी करते हैं। डिग्री सम भी हो सकती है और विषम भी। यदि कोई विषम शिरोबिन्दु है तो इसका मतलब यह होता है कि उस शिरोबिन्दु से निकलने वाले रास्तों की संख्या विषम संख्या है। कोनिग्सबर्ग चित्र में A विषम है और उसी तरह से B, C और D भी विषम हैं। हम कह सकते हैं कि उनकी डिग्री क्रमश: 3, 3, 5 और 3 हैं। यदि किसी चित्र में दो से अधिक विषम शिरोबिन्दु हों तो बगैर किसी मार्ग पर दोबारा चले उसे पार नहीं किया जा सकता। ओइलर ने यही दर्शाया था। यही वजह है कि कोनिग्सबर्ग समस्या का कोई समाधान नहीं है।

चित्र-4 के आव्यूह में रेखाचित्र की जानकारी अपेक्षाकृत सरल रूप में समाहित है। A, B, C और D स्तम्भों को अलग-अलग जोड़ लें। क्या मिला? क्रमश: 3, 3. 5 और 3, ठीक है? इस तरह रेखाचित्र के स्थान पर आव्यूह निर्मित किया जा सकता है। इसी तरीके से लोगों ने जटिल व उलझे हुए रेखाचित्रों की जानकारी को दर्शाने के लिए आव्यूह का इस्तेमाल शुरू किया था (वैसे कोनिग्सबर्ग रेखाचित्र उतना जटिल नहीं है)। कई मायनों में आव्यूह का उपयोग वास्तविक दुनिया की परिघटनाओं के प्रस्तुतीकरण में किया जा सकता है।

| | A | B | C | D |
|---|---|---|---|---|
| A | 0 | 1 | 1 | 1 |
| B | 1 | 0 | 2 | 0 |
| C | 1 | 2 | 0 | 2 |
| D | 1 | 0 | 2 | 0 |

*चित्र-4*

आव्यूह का उपयोग समय के साथ उप-परमाणविक कणों में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या हेतु भी किया जाता है। हाई स्कूल में इनका उपयोग युगपत समीकरणों (simultaneous equations) के हल हेतु किया जाता है। इन समीकरणों में दो या दो से अधिक अज्ञात राशियाँ होती हैं। दरअसल, आव्यूह इतना शक्तिशाली औज़ार है कि इनकी मदद से कई अज्ञात राशियों (20, 30 तक अज्ञात राशियों) वाली युगपत समीकरणों को हल कर सकते हैं।

तो ऐसा रहा आव्यूह से परिचय। क्या बात है! पहली बार मैंने देखा कि गणित में कोई विषय कैसे उभरता है। अच्छा लगा। भले ही हमने इस पर आगे काम नहीं किया, किन्तु मैं यह जानकर खुश था कि गणित के किसी भी विचार के पीछे कोई कारण होता है। ऐसा नहीं है कि विचार आसमान से टपककर हमारी पाठ्यपुस्तकों में छप जाते हों। मेरा खयाल है कि यदि आप क्यों का जवाब देने के लिए किसी मामले की जड़ में जाएँ, तो सीखना ज़्यादा उद्देश्यपूर्ण हो जाता है।

हमने कोनिग्सबर्ग की समस्या में सात पुलों को पार करने के विभिन्न रास्ते टटोलते हुए दो कक्षा-सत्र बिताए और अन्ततः असफल रहे। तब चन्ना ने हमें बताया कि ओइलर ने दर्शाया था कि कोनिग्सबर्ग समस्या को कभी हल नहीं किया जा सकता। आँखों में वही जानी-पहचानी चमक लिए, चन्ना ने बताया कि ओइलर ने अपना प्रमाण कागज़-पेंसिल की मदद से दिया था, पुलों को पार करने की कोशिश तक नहीं की थी। चन्ना ने कहा कि यही गणित की शक्ति है।

चन्ना ने हमें बताया था कि गणित के इस नए विषय 'ग्राफ सिद्धान्त' और उससे सम्बन्धित आव्यूह के विचार का विकास गणित की एक अन्य शाखा 'टोपोलॉजी' यानी स्थलाकृति-विज्ञान के पहले हुआ था। समय के अभाव के चलते वे इनकी कड़ियों पर ज़्यादा रोशनी नहीं डाल पाए थे और न ही हमारे पास इतना समय था कि हम यह देख पाते कि वास्तव में ओइलर ने कोनिग्सबर्ग समस्या को कैसे सुलझाया था। जैसा कि मुझे बाद में पता चला, प्रमाण समझना बहुत मुश्किल न था, लेकिन ओइलर के ज़माने में यह ज़रूर सुर्खियों में रहा होगा। कुछ गणितज्ञ कहते हैं कि कोनिग्सबर्ग समस्या ओइलर का सबसे मशहूर काम था क्योंकि इसने आम लोगों का ध्यान खींचा, हालाँकि यह उनकी सबसे गहरी उपलब्धि कदापि नहीं थी।

चन्ना के साथ हमारी रोमांचक यात्राएँ जारी रहीं, आई.सी.एस.ई. (इंडियन सार्टिफिकेट ऑफ सेकंडरी एजूकेशन) के रूखे-सूखे पाठ्यक्रम से कहीं आगे तक। गणित के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया।

## नक्शों में रंग

चन्ना ने बताया कि पहले-पहले तो ग्राफ सम्बन्धी ओइलर के विचारों (जो कोनिग्सबर्ग पहेली में से उभरे थे) का उपयोग मात्र मनोरंजक गणित में पहेलियाँ सुलझाने और खेलों में किया गया। लेकिन ज्ञान की साधना में अक्सर ऐसे जुड़ाव उजागर होते हैं, जिनके बारे में आपने सोचा भी नहीं था। धीरे-धीरे यह समझ में आया कि ग्राफ के विचार को इस क्षेत्र की कई अन्य समस्याओं पर लागू किया जा सकता है। जैसे चार रंगों की समस्या (Four-Colour Problem - FCP) जिसे कभी-कभी चार रंग प्रमेय भी कहते हैं। इस तरह चन्ना हमें गणित की एक और मशहूर तहकीकात की ओर ले गए थे। बौद्धिक संघर्ष और खोजों को लेकर और अधिक दिलचस्प चर्चा हुई। काश, परीक्षाएँ न होतीं।

FCP को केनेथ एप्पल और वोल्फगैंग हाकेन ने सुलझाया था। और वह भी 1978 में बाल्डविन्स में मेरे प्रवेश से मात्र दो वर्ष पहले। इस पहेली की शुरुआत नक्शानवीसी और मानचित्रण में से हुई थी और यह 1852 से 1976 तक यानी पूरे 124 सालों तक अनसुलझी रही। यह एक मासूम सवाल से शुरू हुई थी जो यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन के एक विद्यार्थी फ्रांसिस गुथ्री ने 1852 में कभी अपने भाई से पूछा था। जिज्ञासावश गुथ्री ने पूछा था कि क्या किसी नक्शे में इस तरह रंग भरे जा सकते हैं कि किन्हीं भी दो सटे हुए इलाकों का रंग समान न हो। यह सवाल शायद उसके मन में तब आया था जब वह इंग्लैंड के नक्शे में रंग भर रहा था। पता नहीं वह नक्शे में रंग क्यों भर रहा था, किन्तु कई बार एकदम निरापद गतिविधि भी चीज़ों के कामकाज के तौर-तरीकों के बारे में गहरी सूझबूझ प्रदान कर सकती है। खैर, फ्रांसिस को तो यह भान भी न होगा कि उसका यह सवाल गणित की दुनिया में भूचाल ला देगा।

अन्ततः इस पहेली को जिस ढंग से सुलझाया गया, गुथ्री बन्धुओं ने उसकी कल्पना तक न की होगी। FCP का कोई आसान कागज़-पेंसिल

*एप्पल और हाकेन ने गणितीय प्रमेयों को साबित करने के लिए सबसे पहले कम्प्यूटर का उपयोग करके तब तक मान्य मोल्ड (ढाँचे) को तोड़ दिया।*

हल नहीं है जिसका सत्यापन कोई भी कर सके। यह पहली बार था कि गणित के एक प्रमुख प्रमेय को 'सिद्ध' करने के लिए सुपरकम्प्यूटर का उपयोग किया गया। सुपरकम्प्यूटर की ज़रूरत आँकड़ों के विशाल ज़खीरे के प्रोसेसिंग के लिए पड़ी। इतनी भारी मात्रा में आँकड़े उत्पन्न करना इसलिए ज़रूरी था क्योंकि पहले 'n' क्षेत्रों वाले नक्शों में छोटे विन्यासों को देखने की कोशिश की गई और फिर यह देखा गया कि क्या यह मान्यता सही है कि चार रंग इस काम के लिए पर्याप्त हैं। 'n' क्षेत्रों वाले नक्शे में विन्यासों की बड़ी संख्या हो सकती है।

गणित समुदाय में इस बात को लेकर बहस चली थी कि क्या कम्प्यूटर-सहायित विधि गणितीय प्रमाण माना जा सकता है। गणित युक्लिड की शैली में तर्क पर आधारित निगमनात्मक प्रमाण का उपयोग करता है जबकि यह तो एक प्रायोगिक प्रमाण जैसा था जिसका उपयोग आम तौर पर प्राकृतिक विज्ञान में किया जाता है।

सरल शब्दों में कहें, तो FCP का वक्तव्य यह है कि किसी नक्शे में इस तरह रंग भरने के लिए चार रंग पर्याप्त हैं ताकि किन्हीं भी दो सटे हुए क्षेत्रों का रंग एक ही न रहे। मेरा खयाल है, इसे समझना आसान है और यह सरलता का धोखा पैदा करती है।

एक ज़्यादा गहन वक्तव्य शायद ऐसा दिखेगा:

"किसी तल का सटे हुए क्षेत्रों में विभाजन, जिससे आपको नक्शा नामक चित्र प्राप्त होता है, में नक्शे के क्षेत्रों में रंग भरने के लिए, ताकि किन्हीं भी दो सटे हुए क्षेत्रों का रंग एक न हो, चार से अधिक रंगों की ज़रूरत नहीं होगी।"

चित्र-5 में दर्शाए गए सरल नक्शे में इस तरह रंग भरने के लिए, ताकि किन्हीं भी सटे हुए क्षेत्रों का रंग एक ही न हो, चार रंगों की ज़रूरत है। यह हमें सामान्य नक्शों जैसा नहीं दिखता क्योंकि यह सीधी रेखाओं वाली ज्यामितीय आकृतियों से बना है। बहरहाल, यह है तो नक्शा ही।

हालाँकि, गणितज्ञ इस बात को पाँच रंगों के सन्दर्भ में सिद्ध कर पाए थे, लेकिन FCP एक सदी से भी ज़्यादा समय तक समाधान का मुँह चिढ़ाती रही। रोचक है, नहीं? हम कभी नहीं कह सकते कि मानव क्रियाकलापों का कौन-सा क्षेत्र ज्ञान के किसी नए क्षेत्र का पालना बनेगा, जिस पर लोग वर्षों

*चित्र-5*

बाद काम करेंगे। तो उस सारे नाटक के बाद हम अब जानते हैं कि चार रंग पर्याप्त हैं, चाहे नक्शा कितना भी जटिल हो, समतल सतह पर हो या गोलाई वाली सतह पर।

इसे करके देखिए। भारत का एक प्रशासनिक नक्शा लीजिए जिसमें रंग न भरे हों (जिसमें राज्यों की सीमाएँ स्पष्ट दर्शाई गई हों)। बच्चे होमवर्क इसी पर करते हैं। हर राज्य में एक अलग रंग भरिए: देखिए कि क्या आप यह काम तीन, चार या पाँच रंगों से कर सकते हैं, इस शर्त का पालन करते हुए कि किन्हीं भी सटे हुए राज्यों में एक ही रंग न भरा जाए। FCP का एहसास बना? यह बहुत सरल दिखता है लेकिन इसे हत्थे चढ़ने में एक सदी से ज़्यादा वक्त लगा था।

तो, चन्ना ने हमें गणित एक्सप्रेस में सवारी कराई। वे हमेशा कहानियों से कक्षा में जान फूँक देते थे और हमें याद दिलाते थे कि पाठ्यक्रम में जितना दिया गया है, गणित सीखना उससे कहीं ज़्यादा है। शायद ज़्यादा दिलचस्प हिस्से तो पाठ्यक्रम से बाहर ही हैं।

## हज्जाम की दुविधा

महीने बीतते रहे। हम घूमते-घामते सेट थियरी (समुच्चय सिद्धान्त) में पहुँचे। और चन्ना की कहानियाँ और रहस्यमय हो गईं। कभी-कभी तो वे प्रहसन भी लगती थीं। समुच्चय की मानक परिभाषा के ढर्रे तक पहुँचने से पहले चन्ना ने एक दिन घोषणा की, "चलो, मैं तुम्हें एक गाँव के एक हज्जाम की कहानी सुनाता हूँ।"

हज्जाम? हमने उम्मीद से उनकी ओर देखा। "मान लो, किसी गाँव में एक हज्जाम है, जो उन सबकी और सिर्फ उन बाशिंदों की हजामत करता है जो खुद की हजामत नहीं करते। तो हज्जाम खुद की हजामत करता है या नहीं करता?"

चलिए, इसके बारे में थोड़ा सोचते हैं। हज्जाम ऐसे किसी बाशिन्दे की हजामत नहीं करता जो खुद की हजामत करता हो। वह सिर्फ उन बाशिन्दों की हजामत करता है जो खुद की हजामत नहीं करते। लेकिन इस सवाल का जवाब देने में आप उलझन में फँस जाते हैं कि हज्जाम की हजामत कौन करता है।

यदि वह खुद की हजामत करे, तो नियम का क्या होगा कि वह ऐसे किसी शख्स की हजामत नहीं करता जो खुद की हजामत करता हो। लेकिन यदि वह खुद की हजामत न करे, तो वह उन बाशिन्दों में से एक होगा जो खुद की हजामत नहीं करते। तब नियम के मुताबिक उसे खुद की हजामत करनी चाहिए।

लीजिए, यह रहा एक विरोधाभास। इसे पचाने में थोड़ा वक्त लगता है। पहली नज़र में तो समस्या आसान लगती है, लेकिन जब इसमें घुसेंगे तो

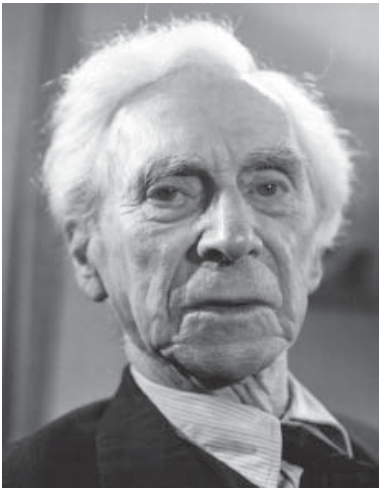

बरट्रैंड रसेल (1872-1970 CE) ने विवादास्पद नाई के विरोधाभास को स्थापित किया, जिसे रसेल के विरोधाभास के रूप में भी जाना जाता है। इससे गणित के बाकी हिस्सों पर भी दूरगामी प्रभाव पड़ा था।

मामला उलझता ही जाएगा। जब कक्षा में इसकी चर्चा हुई थी, तो मुझे याद है कि मैं एक ऐसे हज्जाम की कल्पना करता रहा था जिसकी दाढ़ी बढ़ती ही जा रही है - बढ़ती का नाम दाढ़ी। "हजामत करे या न करे?" बेचारे हज्जाम ने यह सवाल हज़ारों-लाखों बार पूछा होगा।

बहरहाल, हमें इस हज्जाम की दुविधा का सामना करके मज़ा आया था। चन्ना ने बताया था कि यह 'हज्जाम की दुविधा' के नाम से मशहूर है। इसे सबसे पहले गणितज्ञ और दार्शनिक बरट्रैंड रसेल ने बीसवीं सदी की शुरुआत में प्रस्तुत किया था। मुझे याद है कि कक्षा में इस विरोधाभास को लेकर ज़ोर-ज़ोर-से तर्क-वितर्क हुए थे। लेकिन हम इससे निपट नहीं सके थे।

'विरोधाभास' शब्द से हमारा पहला परिचय इसी तरह हुआ था। हममें से किसी को पता नहीं था कि यह प्राणि है क्या बला। चन्ना ने समझाया कि गणित में विरोधाभास तब होता है जब हमारे सामने कोई ऐसा कथन आता है जिसमें ऐसे विचार होते हैं जो सत्य लगते हैं, लेकिन परस्पर विरोधी होते हैं (एक-दूसरे को काटते हैं)। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कथनों पर गौर कीजिए:

"इस वाक्य में सात शब्द नहीं हैं।" जबकि वास्तव में इसमें सात शब्द हैं।

"इस वाक्य में सात शब्द हैं।" जबकि दरअसल इसमें छ: शब्द ही हैं।

विरोधाभास का अर्थ समझने का यह आसान तरीका है। ये वाक्य खुद अपना खण्डन करते हैं। इन वाक्यों का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है? लेकिन इनका अस्तित्व है, हमारा मुँह चिढ़ाते हुए। इसे ही विरोधाभास कहते हैं।

हज्जाम के विरोधाभास के कई विविध रूप हैं और इसे 'आत्म-सन्दर्भ का विरोधाभास' या 'पैराडॉक्स ऑफ सेल्फ रेफरेंस' भी कहते हैं। गणित के कई विरोधाभास इस श्रेणी में आते हैं। चन्ना ने बताया था कि हज्जाम का विरोधाभास गणित की 'समुच्चय

सिद्धान्त' नामक शाखा के केन्द्र में उपस्थित विरोधाभास को उजागर करता है। वे चाहते थे कि हम समझें कि समुच्चय का विषय एक ऐसा विषय है जो गणित के विकास के कुछ सबसे तल्ख विरोधाभास और संघर्ष का गवाह रहा है।

सरल शब्दों में, विरोधाभास का मतलब है कि कोई ऐसा वक्तव्य 'S' होता है कि 'S' और उसका खण्डन ('S नहीं') दोनों सत्य होते हैं (जैसा कि हमने हज्जाम के मामले में देखा था)। ऐसी असंगतियाँ पूरे विषय की बुनियाद को थोड़ा ढुलमुल बना देती हैं, क्योंकि तब हमारे पास किसी भी गणितीय प्रमाण पर भरोसा करने का कोई आधार नहीं होता।

याद करें जब हमने त्रिभुज प्रमेय तथा उसके प्रमाण की चर्चा की थी; चन्ना का आग्रह था कि प्रमाण ठोस व मज़बूत होना चाहिए, बात चाहे किसी भी किस्म के त्रिभुज की हो।

हज्जाम के विरोधाभास जैसे आत्म-सन्दर्भ वाले विरोधाभासों को समझने के लिए, इस विरोधाभास के उस संस्करण पर विचार कीजिए जिसे 'झूठे का विरोधाभास' कहते हैं (मुझे याद है, चन्ना ने इसकी भी बात की थी): "सारे क्रीटवासी झूठे होते हैं।" इस प्राचीन विरोधाभास का श्रेय एपिमेनिड्स को दिया जाता है, जो स्वयं क्रीटवासी थे। वे ईसा पूर्व छठी या सातवीं सदी में क्रीट में रहते थे।

या निम्नलिखित वक्तव्य पर गौर कीजिए: "यह कथन असत्य है।" क्या यह कथन सत्य है? इस कथन को सत्य होने के लिए वास्तव में इसे असत्य होना पड़ेगा। और यदि यह कथन असत्य है, तो यह सत्य है। इसमें ज़रूर कुछ पागलपन है।

हज्जाम के विरोधाभास के समान उपरोक्त सारे कथनों की परिणति विरोधाभास में होती है। ज़रा सोचिए इनके बारे में! खप जाइए। ये विरोधाभास आपके सिर पर सवार हो जाएँगे। पता नहीं किसने सोचा था कि गणित में ऐसे सारे सनकी पेंच-ओ-खम होते हैं। विरोधाभासों को लेकर हमारी हर गर्मागरम चर्चा के बाद चन्ना पूरी कक्षा का मुआयना करते। आम तौर पर उनके मुँह पर सन्तोष की एक मुस्कराहट होती जो सिर्फ उस शिक्षक के नसीब में होती है जिसने सीखने वालों में और ज़्यादा सीखने की ललक पैदा कर दी हो।

मुझे बाद में पता चला कि विद्वान ऑस्ट्रियन-अमरीकी तर्कवादी और दार्शनिक कुर्ट गोडेल ने आत्म-सन्दर्भ विरोधाभासों के आधार पर यह दर्शाया था कि गणित 'अपूर्ण' है और सदा 'अपूर्ण' ही रहेगा। यदि गणित सचमुच अपूर्ण है, तो विज्ञान के बारे में क्या कहा जाए, जिसकी रीढ़ ही गणित से बनी है? तब क्या हम यह कह सकते हैं कि विज्ञान से जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है, वह हमेशा अपूर्ण ही रहेगा? ये उलझाने वाले सवाल हैं।

मैंने इनकी थोड़ी और चर्चा पुस्तक के अन्तिम हिस्से में अतिरिक्त नोट्स वाले खण्ड में की है।

## अनन्त चर्चा

इसके बाद हमने थोड़ी चर्चा अनन्त के बारे में की। यह भी समुच्चयों के सन्दर्भ में ही हुई थी। मुझे याद है चन्ना ने थोड़ा मनहूस अन्दाज़ में कहा था, "अनन्त कोई संख्या नहीं है, क्योंकि यदि यह कोई संख्या होती तो आप इसमें एक जोड़कर अगली संख्या पर विचार करने लगते। यह सिलसिला तो अन्तहीन ढंग से चल सकता है और हमें हर बार सुपरिभाषित संख्याएँ मिलती जाएँगी। इसलिए, हम अनन्त को एक संख्या मानकर अंकगणित की सामान्य संक्रियाओं का उपयोग करके उसे नहीं सम्भाल सकते।"

इस बात ने मुझे काफी हैरान किया। यदि अनन्त कोई संख्या नहीं है, तो फिर अनन्त का चक्कर क्या है? हम इससे कैसे निपटेंगे? अनन्त की चर्चा के दौरान समुद्र तट पर रेत के कणों की संख्या की बात उठी थी। उनकी संख्या निश्चित (सान्त) है या अनन्त? मेरा ख्याल है कि हमारी चर्चा में यह बात उठी थी कि अनन्त क्या हो सकता है और क्या नहीं। मैं उन छात्रों में था जिनका तर्क था कि समुद्र तट पर रेत के कणों की संख्या अनन्त है जबकि अन्य कुछ का कहना था कि वह निश्चित है। मेरा तर्क यह था कि सिद्धान्ततः रेत के हरेक कण को अनन्त रूप से तोड़ा जा सकता है। तब कणों की संख्या निश्चित कैसे हो सकती है? आपको क्या लगता है?

अनन्त के बारे में चकराने वाली बात यह थी कि इसे किसी अन्य संख्या के रूप में नहीं देखा जा सकता है। मामला और भी रोचक हो गया जब चन्ना ने बताया कि "अनन्त की अलग-अलग कोटियाँ होती हैं।" उदाहरण के लिए, संख्याओं का कौन-सा समुच्चय ज़्यादा बड़ा है - सारी सम संख्याओं का समुच्चय या सारी प्राकृतिक संख्याओं का समुच्चय? संख्याओं के ये दोनों समुच्चय अनन्त हैं, लेकिन क्या हम कह सकते हैं कोई एक-दूसरे से ज़्यादा बड़ा या ज़्यादा अनन्त है? क्या अनन्त समुच्चयों की तुलना का कोई तरीका है?

मैंने काफी बाद में जाना कि संख्या रेखा पर किन्हीं भी दो बिन्दुओं के बीच 'वास्तविक संख्याएँ' (जिनमें पूर्णांक संख्याएँ, भिन्न या परिमेय संख्याएँ और अपरिमेय संख्याएँ शामिल हैं) 'प्राकृतिक संख्याओं' (हमारे द्वारा गिनती के लिए इस्तेमाल की जाने वाली संख्याएँ, जैसे 1, 2, 3 वगैरह) के समुच्चय से ज़्यादा होती हैं। यह थोड़ा उलझाने वाला है, नहीं? जर्मन गणितज्ञ और समुच्चय सिद्धान्त के संस्थापक जॉर्ज कैंटर ने प्रमाण के आधार पर दर्शाया था कि प्राकृतिक

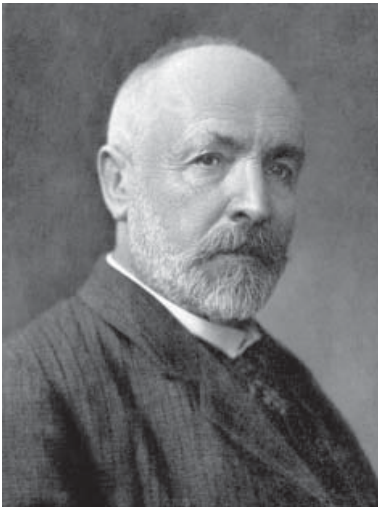

*जॉर्ज कैंटर (1845-1918 सीई) के पथप्रवर्तक कार्य ने गणितज्ञों को पहले से ज़्यादा अधिक कठिन और सटीक शब्दों में अनन्त से निपटने के लिए सक्षम बनाया।*

संख्याओं की अपेक्षा वास्तविक संख्याएँ उच्चतर श्रेणी का अनन्त समुच्चय हैं। उनके इस प्रमाण को प्राय: गणित का सबसे सुरुचिपूर्ण प्रमाण कहा जाता है।

कैंटर ने यह विचार प्रस्तुत किया था कि अनन्त शब्दश: अलग-अलग आकार का हो सकता है। दरअसल, उन्होंने 'अनन्तों की अनन्तता' का दावा किया था! ऐसे विचार प्रस्तावित करने के लिए उन्हें साथी गणितज्ञों के तीखे, कभी-कभी निन्दात्मक, विरोध का सामना करना पड़ा था। कई गणितज्ञ तो अनन्त के विचार के साथ जूझने को लेकर भयाक्रान्त हो जाते थे। ऐसे गणितज्ञों में सबसे मशहूर थे हेनरी पॉइनकेयर, जिन्होंने कैंटर के काम को गणित को ग्रस्त करने वाली 'गम्भीर बीमारी' की संज्ञा दी थी। अलबत्ता, कैंटर के विचारों ने उनके समकालीन गणितज्ञों को अनन्त को सम्भालने का एक औज़ार प्रदान किया था।

## फर्मा का अन्तिम प्रमेय

और अन्त में, बिग बी - 'फर्मा के अन्तिम प्रमेय' को कौन भूल सकता है? हम चन्ना की कक्षा में पायथागोरस प्रमेय के प्रमाण की चर्चा कर रहे थे: कि किसी समकोण त्रिभुज के विकर्ण का वर्ग शेष दो भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है। अर्थात $a^2 + b^2 = c^2$ जहाँ a और b समकोण त्रिभुज की दो भुजाएँ हैं और c विकर्ण है। (याद है लीलावती में भास्कराचार्य की पहेली, जिसके हल के लिए पायथागोरस प्रमेय का उपयोग किया जाता है?)

वैसे पक्का कहना मुश्किल है मगर आखिरी गिनती तक पायथागोरस प्रमेय के पूरे 367 अलग-अलग प्रमाण थे! 'अलग-अलग' शब्द का उपयोग कर रहा हूँ क्योंकि कोई प्रमाण गिनती में तभी शामिल होता है जब वह बाकी सारे प्रमाणों से अलग हो। शुरुआती बीसवीं सदी के एक प्रोफेसर एलिशा स्कॉट लूमिस ने अपनी पुस्तक पायथागोरियन प्रपोज़िशन (पायथागोरस प्रस्तावना) में इन 367 प्रमाणों का संकलन

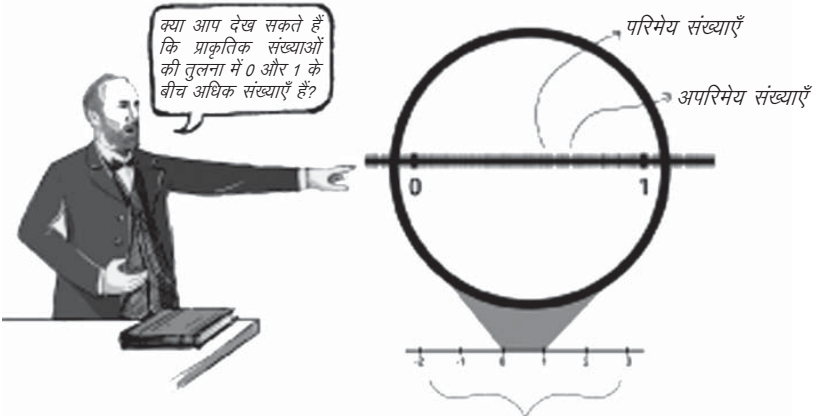


*चित्र-6*

प्रस्तुत किया है। आश्चर्यजनक बात यह है कि एक ही सत्य को स्थापित करने के इतने अलग-अलग तरीके हैं। इस सूची में भास्कर द्वारा प्रस्तुत दृश्य प्रमाण भी है। बताते हैं कि प्रमाण का चित्र दिखाते हुए उन्होंने कहा था, 'देखो'। इस प्रमाण के लिए उन्हें किसी शाब्दिक विवरण की ज़रूरत नहीं पड़ी थी।

हाई स्कूल का हर बच्चा पायथागोरस प्रमेय जानता है मगर सम्भवत: उनमें से कई छात्र प्रमेय के आगे नहीं गए होंगे। खैर, चन्ना ने ठीक यही किया। हमें फर्मा के अन्तिम प्रमेय (FLT) की दावत दी गई जो पूरे 348 साल तक अनसुलझी पड़ी रही थी। तो FLT है क्या? कहानी कुछ यों है कि पियरे डी फर्मा नाम के एक भले फ्रांसीसी, जो पेशे से वकील थे, और गणित जिनका शौक था, 1650 ईस्वी के आसपास 'पायथागोरस तिकड़ियों' पर विचार कर रहे थे।

पहले संख्याओं के ऐसे समूहों के उदाहरण दे देता हूँ जिन्हें पायथागोरस तिकड़ी की संज्ञा दी गई है। {3, 4, 5}, {5, 12, 13} वगैरह पायथागोरस तिकड़ियाँ हैं क्योंकि $3^2 + 4^2 = 5^2$ और $12^2 + 5^2 = 13^2$। ऐसी तिकड़ियाँ बनाने के कई तरीके हैं। मसलन, हम ऐसी तिकड़ी की सभी संख्याओं में 2 जैसी किसी एक संख्या का गुणा करके नई तिकड़ी प्राप्त कर सकते हैं। जैसे {3, 4, 5} में 2 का गुणा करने पर हमें प्राप्त होगा {6, 8, 10}और यह आसानी-से देखा जा सकता है कि $6^2 + 8^2 = 10^2$। ज्यामितीय दृष्टि से देखें तो इसका मतलब होता है कि हम एक ऐसा समकोण त्रिभुज बना सकते हैं जिसकी भुजाओं की लम्बाइयाँ 6, 8 व 10 इकाई होगी और विकर्ण की

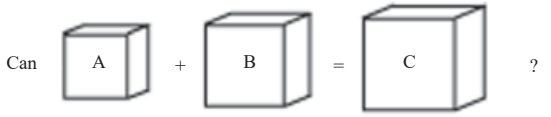


(Can $A^3 + B^3 = C^3$?)

*चित्र-7*

लम्बाई 10 इकाई होगी। आप इस तिकड़ी को 2 से गुणा कर दीजिए और एक और तिकड़ी प्राप्त हो जाएगी। ऐसा अन्तहीन ढंग से किया जा सकता है। ऐसी तिकड़ियाँ प्राप्त करने के अन्य तरीके भी हैं।

धीरे-धीरे चन्ना हमें कहानी के पेंच तक ले गए। उन्होंने बताया कि फर्मा ने सरल-सा सवाल पूछा था, जो शायद ऐसा कुछ रहा होगा: "क्या यही क्रिया घनों के साथ भी की जा सकती है - अर्थात क्या हम ऐसी तीन संख्याएँ 'a', 'b' और 'c' खोज सकते हैं ताकि $a^3 + b^3 = c^3$ हो?" वे तो मात्र एक पैटर्न ढूँढ़ रहे थे। याद रखें, गणित सीखने का एक अच्छा पैमाना यह है कि छात्र अन्तर्निहित सम्बन्ध और पैटर्न ढूँढ़ने में रुचि और काबिलियत हासिल कर ले। यह एक गणितज्ञ के स्वभाव की भी कसौटी है।

यह बात हमारे सहजबोध के खिलाफ जाती है कि $n = 3$ होने पर यह काम नहीं करता। शायद हमें लगा होगा कि यदि किसी समकोण त्रिभुज की दो भुजाओं पर बने वर्ग उसके विकर्ण पर बने बड़े वर्ग में समा सकते हैं तो यह चीज़ ठोस घनों पर भी लागू होनी चाहिए। जब बात घन की होती है तो हम तीसरी घात की बात कर रहे हैं (जैसे $a^3$)। घन एक त्रि-आयामी वस्तु है जो छ: वर्गाकार फलकों से घिरी है जो एक-दूसरे से समकोण पर स्थित हैं।

चित्र-7 में $A^3$ को एक घन माना जा सकता है जिसकी एक भुजा A इकाई की है। इसी प्रकार से, $B^3$ और $C^3$। किसी A भुजा वाले घन का आयतन (A x A x A) या $A^3$ होता है। यही स्थिति B और C भुजा वाले घनों की भी होगी। तो जब हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि तीन ऐसी पूर्णांक संख्याएँ A, B और C होंगी कि $A^3 + B^3 = C^3$ हो, तो हम इस सवाल की कल्पना ज्यामितीय दृष्टि से कुछ इस तरह कर सकते हैं: दो घन A और B, एक तीसरे बड़े घन C में ठीक-ठीक समा जाएँ (मानकर कि वह घन खोखला है)। लेकिन गणित प्राय: सहजबुद्धि के विपरीत चला जाता है। पता यह चलता है कि $A^3 + B^3 = C^3$ सही नहीं बैठता!

वैसे, संख्याओं की एक तिकड़ी है जो यह सिद्ध करने के बहुत करीब पहुँच जाती है कि $A^3 + B^3 = C^3$ सत्य है - {12, 10, 9}। ($10^3 + 9^3$) का हिसाब लगाइए। यह 1729 आता

है जो 'रामानुजन संख्या' के काफी करीब है। और $12^3$ का मान आता है 1728, बहुत नज़दीक है न? क्रिकेट में कहते हैं न, एल.बी.डब्लू. का बहुत नज़दीकी मामला!

जब बात $n = 2$ (जैसे यहाँ पायथागोरस प्रमेय है) या $n = 3$ की हो तो हम इसकी कल्पना दृश्य रूप में कर सकते हैं। लेकिन जब बात $n = 4, 5, 6...$ पर पहुँच जाए तो दृश्य बिम्ब के रूप में उसकी कल्पना कैसे करेंगे? तब हम मदद के लिए दो या तीन-आयामी वस्तुओं में पनाह नहीं ले सकते जिसके हम रोज़मर्रा के जीवन में आदी हैं। इस पड़ाव पर आकर चीज़ें अमूर्त हो जाती हैं और आपको सवाल को देखने के नए व अलग तरीके ढूँढ़ना पड़ते हैं।

लेकिन गणितज्ञ तब तक चैन से नहीं बैठ सकते जब तक कि वे इस बात का ठोस प्रमाण न विकसित कर लें कि फर्मा की प्रमेय सारे 'n' के लिए सत्य नहीं है, जहाँ 'n' कोई धनात्मक पूर्णांक संख्या है और $n>2$ है। गणितज्ञ भौतिक विश्व की सीमाओं से बँधे नहीं होते और 'n' आयामों में काम करना उनके लिए आम बात है।

चन्ना ने बताया था कि फर्मा पूछते गए थे: क्या हम इसे चौथी घात के लिए कर सकते हैं, यानी क्या हम ऐसी 'a', 'b' और 'c' संख्याएँ खोज सकते हैं ताकि $a^4 + b^4 = c^4$ सही बैठे? अन्ततः उन्होंने सवाल किया था: क्या ऐसी तीन संख्याएँ 'a', 'b' और 'c' हो सकती हैं जिनके लिए $a^n + b^n = c^n$ सम्भव हो? फर्मा ने अवश्य ही 'a', 'b' और 'c' की विभिन्न घातों के लिए प्रमाण हासिल करने की कोशिश की होगी। बताते हैं कि उन्होंने चौथी घात के लिए नकारात्मक प्रमाण प्राप्त कर लिया था अर्थात वे सिद्ध कर पाए थे कि समीकरण $a^4 + b^4 = c^4$ का अस्तित्व नहीं है। हम नहीं जानते कि क्या उन्होंने इसी प्रकार से यह भी सिद्ध किया था कि 'a', 'b' और 'c' की उच्चतर घातों के लिए ऐसे समीकरणों का अस्तित्व नहीं है। अलबत्ता, अन्ततः उन्होंने लैटिन में घोषणा की थी:

*पियरे डी फर्मा (1601-65 सीई) - वकील और 'शौकीनों के राजकुमार' - सत्रहवीं शताब्दी के महान गणितज्ञ थे। उनकी भविष्य में आने वाली पीढ़ी की चुनौती को आखिरकार 1994 में हल किया गया।*

"Cubum autem in duos cubos, aut quadrato-quadratum in duos quadrato-quadratos, et generaliter nullam in infinitum ultra quadratum potestatem in duos eiusdem nominis fas est dividere cuius rei demonstrationem mirabilem sane detexi. Hanc marginis exiguitas non caperet."

हिदी में इसका अनुवाद कुछ इस तरह होगा:

"किसी घन को दो घनों में या किसी एक चौथी घात को दो छोटी-छोटी चौथी घातों में, या सामान्य रूप से दो से अधिक घात को उसी के बराबर दो घातों में बाँटना असम्भव है। मैंने इसका सचमुच अद्‌भुत प्रमाण खोज लिया है लेकिन यह हाशिया उसके लिए बहुत संकरा है।"

दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई तीन पूर्णांक संख्याएँ 'a', 'b' और 'c' नहीं हैं जो समीकरण $a^n + b^n = c^n$ को n का मान 2 से अधिक होने पर सन्तुष्ट कर सकें।

"मैंने इसका सचमुच अद्‌भुत प्रमाण खोज लिया है लेकिन यह हाशिया उसके लिए बहुत संकरा है।" यह कथन फर्मा ने एक किताब *अरिथमेटिका* में हाशिए पर लिखा था। यह पुस्तक तीसरी सदी के एक महान गणितज्ञ डायोफैन्टस द्वारा लिखी गई थी। फर्मा की टिप्पणी युक्त यह प्रति फर्मा के निधन के 30 साल बाद 1665 में खोजी गई थी। हम वास्तव में जानते नहीं कि वकील साहब ने प्रमाण पता कर लिया था या नहीं। कई लोगों को लगता था कि उन्होंने प्रमाण नहीं खोजा था क्योंकि FLT के प्रमाण हेतु ज़रूरी औज़ार उस समय उपलब्ध नहीं थे। शायद वास्तविकता कभी पता नहीं चलेगी।

अलबत्ता, फर्मा के कथन ने गणित की सबसे प्रख्यात समस्याओं में से एक को जन्म दिया जो लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक सुलझ नहीं पाई और दुनिया भर के गणितज्ञों को चकरा दिया। हलचल इतनी अधिक थी कि FLT को प्रमाणित करने के लिए जर्मन उद्योगपति पौल वोल्फस्केल ने 1908 में 1 लाख मार्क का इनाम भी घोषित कर दिया था।

अन्ततः कहानी का समापन करते हुए चन्ना ने थोड़ा रुआँसा होकर कहा था, "शायद किसी दिन तुममें से कोई इसे सुलझाएगा।" हम उनकी निराशा को महसूस कर सकते थे।

आगे बढ़ने से पहले, मैं आपके सामने तीन-तीन संख्याओं के दो समुच्चय छोड़ूँगा, जो शायद फर्मा और उनके अन्तिम प्रमेय को झुठला सकेंगे। इनको परखिए, अपना भाग्य आज़माइए, मशहूरी पर अपना दावा जताइए और इनाम की राशि मेरे साथ बाँटिए। ये रहे वे दो समुच्चय:

पहला समुच्चय है:

$3987^{12} + 4365^{12} = 4472^{12}$

दूसरा समुच्चय है:

$1782^{12} + 1841^{12} = 1922^{12}$

मध्य 1980 का दशक FLT का रोमांचक दौर था। उस समय तक अनगिनत गणितज्ञ इस प्रमेय पर हाथ आज़मा चुके थे और अथक परिश्रम के बाद घात n के विभिन्न मानों के लिए प्रमाण प्रस्तुत किए जा चुके थे। 1980 में बाल्डविन के शताब्दी वर्ष तक 1,25,000 तक की घात (n) के लिए FLT को प्रमाणित किया जा चुका था। लेकिन धनात्मक पूर्णांक संख्याओं की अनन्तता को देखें, तो 1,25,000 कुछ नहीं है। ज़रूरत तो एक ऐसे सामान्य प्रमाण की है जो हरेक मामले में लागू हो सके। त्रिभुज के तीन कोणों के योग वाली प्रमेय का प्रमाण याद है न? जब पहली बार हमारा सामना प्रमाण की धारणा से हुआ था, तो हम बहुत जूझे थे। यह किसी भी अन्य सवाल को छुड़ाने से अलग था। और विशाल विरोधी उदाहरण (Monstrous Counter Example) एक और ऐसी ही कवायद थी।

हमें ज़रा भी अन्दाज़ नहीं था कि 1985 में जब हम कक्षा 10 में थे, तब एक ब्रिटिश गणितज्ञ एंड्रयू वाइल्स यह निर्णय लेने की कगार पर थे कि वे अपने जीवन के अगले सात-आठ साल पूरी तरह गोपनीय ढंग से FLT को तोड़ने में लगाएँगे। उस समय तक गणित की नई शाखाएँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। वाइल्स को इनकी मदद मिली। उनका चक्करदार प्रमाण पूरे 150 पन्नों में फैला था।

पता नहीं जब 1994 में अन्ततः इस समस्या को सुलझा हुआ घोषित कर दिया गया तो चन्ना को कैसा महसूस हुआ होगा। तब उन्होंने अपने छात्रों से क्या चर्चा की होगी? वाइल्स की कहानी दिलचस्प है, किन्तु यदि मैं यहाँ उसे लेकर बैठ गया, तो हम चन्ना से दूर चले जाएँगे। कई सारी मशहूर किताबों में FLT जद्दोजहद की बात की गई है और इसका प्रमाण समझाया गया है। आप उन्हें देख सकते हैं।

FLT सारी बाधाओं के विरुद्ध मानव मस्तिष्क और जीवट की जीत की एक उम्दा मिसाल है। वाइल्स की कहानी बताती है कि एक व्यक्ति की अदम्य इच्छा क्या कुछ हासिल कर सकती है। यह मानव संघर्ष की किसी भी अन्य कहानी के बराबर ही बाँधने वाली है। यह दर्शाती है कि यदि हम अपने सपनों को साकार करने के लिए धैर्यपूर्वक लगे रहें तो सारी बाधाओं के बावजूद एक दिन हम मंज़िल पा ही लेंगे।

स्कूल के हर छात्र के लिए गणित ऐसी यात्रा की शुरुआत बन सकता है। शिक्षा का काम यह है कि ऐसे हालात तैयार करे कि हर छात्र इस सुन्दर विषय तक पहुँच बना पाए। यह काम आसान नहीं है। हमारा सामना एक सुस्थापित रटन्त विद्या की संस्कृति से है। यह एक ऐसी

संस्कृति है जो विभिन्न पृष्ठभूमियों और प्रायः चुनौतीपूर्ण पृष्ठभूमियों से आने वाले छात्रों के साथ एक सामर्थ्यजनक ढंग से संवाद नहीं करती।

## असीम विस्मय

चन्ना कई बारे हमें इन दिलकश पगडण्डियों पर ले गए। मैं उस विस्मय का ज़िक्र ज़रूर करूँगा जो मैंने उस समय महसूस किया था जब हमारा सामना पाई (π) से हुआ था। पाई उस समूह का सदस्य है जिन्हें अपरिमेय संख्याएँ कहते हैं। ये ऐसी संख्याएँ हैं जो तर्कसंगत ढंग से व्यवहार नहीं करतीं और उनका भिन्न वाला हिस्सा चलता ही जाता है, चलता ही जाता है, दशमलव अंक का सिलसिला खत्म ही नहीं होता। मुझे आज भी हैरत होती है कि ऐसी संख्या हो भी सकती हैं। हमने चन्ना से जाना कि उस समय तक π को बस में करने की कोशिशें अकल्पनीय रूप से विशाल स्तर पर पहुँच चुकी थीं। उस समय उपलब्ध सबसे तेज़ सुपरकम्प्यूटरों की मदद से यह पता चला था कि पाई वास्तव में दशमलव अंकों की एक अन्तहीन और अपुनरावर्ती धारा है। दशमलव के बाद पूरे 1.6 करोड़ अंकों तक तो यही स्थिति थी। मैं चकरा गया था। अब तो उन्होंने गणना कई खरब अंकों तक कर ली है, लेकिन फिर भी दशमलव अंक खत्म होने का नाम नहीं ले रहे हैं।

उन कक्षाओं को याद करके आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जब हमें गणितीय यथार्थ की एक अपेक्षाकृत गहरी झलक मिली थी, जो परीक्षाएँ पास करने और चूहा-दौड़ के ढर्रे से, 'सिलेबस पूरा करने' के दबाव से एकदम अलग थी।

चन्ना का उद्देश्य सीधा-सादा था - हमें यह एहसास कराना कि गणित कोई मुर्दा विषय नहीं हैं बल्कि एक विकासमान मानवीय कहानी है जिसमें उन लोगों के लिए ढेर सारी दिलचस्प बातें और रोमांच है जो इसका अध्ययन करने को उत्सुक हैं। इससे भी बढ़कर उनका उद्देश्य था कि हममें से जो लोग कम उत्सुक थे या विषय के प्रति नकारात्मक रवैया रखते थे, उन्हें खोजबीन के इस सफर में जोड़े रखना।

यह सब सिलेबस में क्यों नहीं डाला जाता? सबसे बढ़िया हिस्सा तो छोड़ ही दिया गया है। मैं जानता हूँ कि मेरी यह बात सुन-सुनकर आप थक चुके होंगे, किन्तु मुझे लगता है कि इस बात को बार-बार, कई बार कहना मुनासिब है।

***

मार्च 15, 1985। हमारी दसवीं की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी हैं, जो मेरे लिए एक बड़ी राहत की बात है। आज ग्रेजुएशन दिवस था। बाल्डविन्स में इसे 'कमेंसमेंट एक्सरसाइज़ेस' यानी शुरुआती कसरत कहते हैं,

गोया हमारे जीवन में कुछ नया होने जा रहा है।

हम सब लिंकन हॉल में इकट्ठे हुए। स्कूल छोड़ने वगैरह के बारे में आम भाषणों के बाद, मुझे याद है हमने एक मोमबत्ती जलाई थी और गलियारे से होकर लिंकन हॉल के बाहर आ गए थे। बाहर, ज़िन्दगी में जहाँ भी जाऊँगा बाल्डविन्स की भावना को साथ लेकर जाऊँगा। शायद यही अपेक्षा भी थी। हम सबने सूट पहने थे, नौजवान पुरुषों के समान। चन्ना ने यही कहा था। अन्ना ने इस अवसर के लिए अपना एक कोट मेरे लिए रफू करवा दिया था। मैंने सूट पहली बार पहना था।

हमने थोड़ा जल्दी डिनर किया। स्कूल की ओर से दावत थी। पहली बार मैंने स्कूल में भरपेट खाना खाया। उसके बाद गुडबाय, हाथ मिलाना, गले लगना वगैरह चला। शिक्षकों और दोस्तों को पता नहीं था कि हम फिर से कब मिलेंगे। सब कुछ पलक झपकते पूरा हो गया।

चुपचाप मैं मेन गेट की ओर गया, अपने सूट में पसीने से भीगा और जकड़ा हुआ। होसुर रोड पर भारी ट्राफिक था। लगभग अँधेरा था। सेक्शन ए के एक दोस्त ने आवाज़ दी। वह हम दोनों का एक फोटो चाहता था। हम दोनों गेट के सामने खड़े हो गए और किसी ने कैमरा क्लिक किया। पता नहीं वह फोटो अभी भी मौजूद है या नहीं। तभी यह बात मेरे मन में कौंधी - बाल्डविन्स में मेरा आखिरी दिन था यह।

मैं हक्का-बक्का-सा सायकिल चलाते हुए घर पहुँचा, सूट को बैग में ठूँसकर। इस बात का आदी होने में वक्त लगेगा कि अब कभी बाल्डविन्स नहीं जाना है।

आजी घर पर अकेली थीं। अन्ना शाम की शिफ्ट में गए थे, और अम्मा पास ही एक अस्पताल की इन्टेंसिव केयर युनिट में अपनी बढ़ी हुई शुगर से जूझ रही थीं। मैं पहले अस्पताल गया, खुदा का शुक्र था कि उनकी डायबिटीज़ अन्ततः काबू में थी।

सम्भल-सम्भलकर मैंने एक दूसरी दुनिया में कदम रखे, साथ में स्कूल की तमाम यादें थीं। जानता नहीं था कि आने वाले वर्षों में मुझ पर उनका क्या असर होने वाला है।

---

**शेषागिरी केएम राव:** यूनीसेफ, छत्तीसगढ़ में शिक्षा विशेषज्ञ हैं। प्रारम्भिक शिक्षा और बाल्यावस्था में विकास में विशेष रुचि। साथ ही, आधुनिक शैक्षिक मुद्दों पर लिखने में दिलचस्पी।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी:** *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *द मैन हू टॉट इंफिनिटी* से लिया गया एक अंश है।

# एक कहानी कई विचार

नीतू यादव

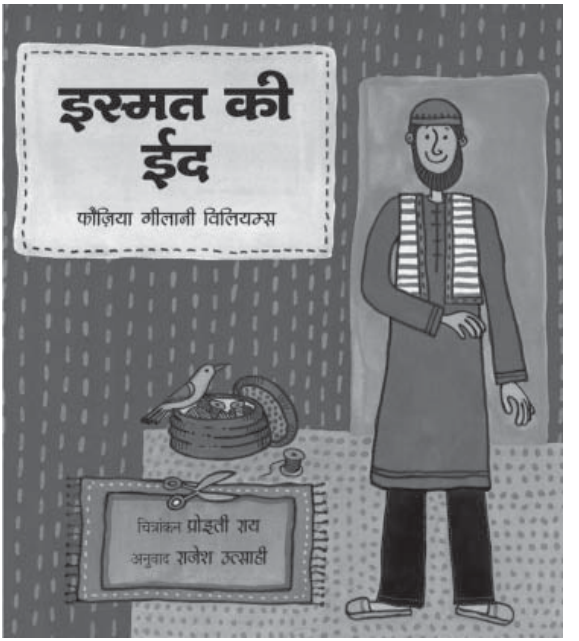


हम देखते हैं कि विभिन्न आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चों के आपस में खेलने की जगहों, बाज़ारों और रहने की जगहों, और तो और, स्कूलों में भी ऐसा विभाजन है कि इन बच्चों के बीच मेलमिलाप के मौके ही नहीं बनते। इस स्थिति के चलते विचारों और भावनाओं के वास्तविक आदान-प्रदान सम्भव नहीं हो पाते हैं। आज के समय में बच्चों को शुरुआत से ही इस तरह का एक्स्पोज़र देना अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिससे कि बच्चों के मन में विभिन्न सामाजिक तबकों के प्रति एक समझ और संवेदनशीलता का भाव विकसित हो। इसे सम्भव बनाने के लिए ज़रूरी है कि बच्चों के साथ ऐसी किताबों को साझा किया जाए जो अलग-अलग तरह के जीवन और संस्कृतियों की झलक दिखाती हों। इस तरह विचारों का आदान-प्रदान और एक-दूसरे की ज़िन्दगी को जानना-

समझना एक किताब के सुरक्षित माध्यम से हो पाना सम्भव है। किताबों पर गम्भीर और गहरी चर्चाएँ चलाई जा सकती हैं ताकि बच्चों के मन में जो चलता है, उसे समझने और उन विचारों को एक तार्किक दृष्टि दे पाने के अवसर बन पाएँ।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में हाल ही में बच्चों के साथ साझा की गई एक किताब *इस्मत की ईद* से जुड़े कुछ अनुभव साझा करना चाहूँगी। तूलिका प्रकाशन द्वारा 2007 में प्रकाशित किताब *इस्मत की ईद* एक तुर्की कहानी है। इसे लिखा है फौज़िया गिलानी विलियम्स ने जिसका अनुवाद राजेश उत्साही ने किया है और प्रोइती राय ने किताब चित्रित की है।

## बच्चों के मन समझना

यह कहानी मैंने दो अलग-अलग पुस्तकालयों में सुनाई। चूँकि कहानी मुस्लिम परिवेश की झलक दिखाती है तो सबसे पहले मैंने यह कहानी 'नया बसेरा' पुस्तकालय में सुनाई। यहाँ सभी मुस्लिम बच्चे आते हैं। यह कहानी उनके अपने रिवाज़ से जुड़ी थी। मैंने किताब का नाम छुपाते हुए पहला पेज दिखाकर बच्चों से पूछा, "इस कहानी में क्या होगा और यह कहानी किस बारे में होगी?" एक बच्चे ने कहा, "इस आदमी ने टोपी पहनी है और कालीन भी दिख रही है। यह नमाज़ पढ़ने जाएगा।" एक बच्चा बोला, "ये टेलर की कहानी होगी।" बाकि बच्चे भी इस बात को ही दोहरा रहे थे। फिर मैंने कहानी का नाम बताया, "इस कहानी का नाम है *इस्मत की ईद*" और दुबारा पूछा, "अब बताओ, कहानी में क्या होगा?" इस बार ज़्यादा जवाब आए। किसी ने कहा, "सब इसके पास ईद के लिए कपड़े सिलवाने आएँगे।" किसी ने कहा, "ईद पर सब नए कपड़े लेते हैं। यह टेलर होगा तो इसकी खूब कमाई होगी और यह मज़े से ईद मनाएगा।" एक ने कहा, "इस्मत इसकी बेटी होगी।" एक बच्ची ने कहा, "दीदी, यह सबके कपड़े सिलने के चक्कर में खुद के लिए कुछ नहीं लेगा।" ये कथन कहानी से काफी मिलता-जुलता था और इसके साथ ही हम कहानी सुनने-सुनाने की ओर बढ़े। बच्चों ने जब कहानी में पहला चित्र देखा तो पता चला कि इस्मत चप्पल जोड़ने का काम करता है।

मेरे श्रोताओं को थोड़ा अजीब लगा, कहने लगे, "हमारे यहाँ तो कोई मुसलमान यह काम नहीं करते।" मैंने कहा, "मैंने तो बेचते देखा है; यह जूते बेचता है।" तो बच्चों का बोलना था, "बेचने जाते हैं पर जोड़ते नहीं। चित्र में तो इसकी दुकान जूते जोड़ने जैसी दिख रही है।" कहानी को मंज़ूर कराने के उद्देश्य से और आगे बढ़ने के लिए मैंने कहा, "यहाँ अपने शहर में नहीं तो शायद किसी और जगह करते हों।" बच्चे मान गए, "हाँ, यह हो सकता है।"

फ़ोटो: नीरू भारद्वाज

आगे कहानी के मुख्य घटनाक्रम पर पहुँचे तो बच्चों को बहुत मज़ा आया। उन्होंने भी अपने घरों में बनने वाले पकवानों के बारे में बताया। कुछ बच्चों ने बताया कि शीर कुरमा, सेवईं कैसे बनाई जाती हैं। ईदी और ईद पर क्या करते हैं, के बारे में भी बताया। चर्चा करते समय एक खास बात पर मेरा ध्यान गया। जब बच्चे अपनी बातें बता रहे थे तो उनके चेहरों पर चमक थी। कहानी के बीच में बच्चों के संवाद ज़्यादा हो रहे थे। कहानी में आए नामों को भी बच्चे अपने परिवेश से जोड़कर देख रहे थे, जैसे 'यास्मीन' सुनते ही दो बच्चों ने कहा, "ये हमारी बाजी का नाम है।" वे अपनी बातें कहने के लिए उतावले थे, मुझे उन्हें रोकना पड़ा और कहना पड़ा कि बाकी बातें हम कहानी पूरी सुनने के बाद करेंगे।

कहानी सुनाने के बाद मैंने बच्चों से पूछा कि उनको कहानी कैसी लगी और किसको क्या पसन्द आया और क्या नया पता चला। बहुत सारे जवाब थे, एक बच्चे ने कहा कि उसे इस्मत बहुत अच्छा लगा, वह सबके लिए तोहफे लाता है, "मेरे अब्बू भी लाते हैं।" किसी को पूरी कहानी अच्छी लगी। एक बच्चे ने कहा, "जिस चित्र में इस्मत छोटी पेंट पहनता है, वह चित्र बहुत अच्छा लगा।" बच्चों को इस कहानी में कुछ नया नहीं लगा पर उनको कहानी अच्छी लगी क्योंकि कहानी ईद के बारे में थी। 15-20 मिनट बच्चों के साथ बहुत अच्छी चर्चा चली। कहानी सुनाने के बाद उस किताब को 3-4 बच्चे इशू करवाने के लिए भी आ गए।

पूरी बातचीत में यह समझ आया कि जब कहानी अपने खुद के परिवेश से जुड़ी होती है, तो बच्चे उसे अपने अनुभवों से जोड़कर समझते हैं। पढ़ने के आनन्द के साथ-साथ अपनी बातें बिना संकोच कहते हैं। डेनिस वॉन स्टोकर भी अपने लेख *बच्चों के विकास में साक्षरता और किताबों का महत्व* में कहती हैं, 'पढ़ने का असली सुख ऐसी चीज़ों को पढ़ने के सन्तोष से मिलता है जो हमें निजी तौर पर सम्बोधित करती हैं, हमें निजी तौर पर छूती हैं।" यह बहुत महत्वपूर्ण है और समझ भी आता है। इसके साथ-साथ किताब की भूमिका को अन्य परिप्रेक्ष्य में समझकर भी देखा, क्योंकि किताबें अभिव्यक्ति की क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ संस्कृतियों की वाहक भी होती हैं जिनमें भाषा, खानपान, रीतिरिवाज़, जीवनशैली, अनुभव इत्यादि को समझने का मौका मिलता है। *इस्मत की ईद* कहानी में भाषा से लेकर खान-पान की एक झलक मिलती है। पर ऐसी कहानियाँ किसी और समुदाय के बच्चों में स्पष्टतः अलग तरह से समझी जाती हैं। इसके बारे में दूसरे अनुभव में देखने-समझने को मिला।

## एक फर्क अनुभव

इस कहानी को प्रेमपुरा बस्ती के पुस्तकालय में भी सुनाया। यहाँ ज़्यादातर बच्चे हिन्दू हैं और कुछ मुस्लिम भी हैं पर जिस दिन कहानी सुनाई, उस दिन कोई भी मुस्लिम समुदाय का बच्चा/बच्ची नहीं आए थे। पहले की तरह जब किताब का मुख्यपृष्ठ दिखाते हुए पूछा कि इस कहानी में क्या होगा, तो एक बच्चे ने कहा, "यह कहानी मुसलमान के बारे में होगी।" एक बच्चा बोला, "मुसलमान बकरी काटते हैं और मटन खाते हैं।" "आप नहीं खाते?" मैंने पूछा। एक बच्चे ने कहा, "हम तो अण्डा भी नहीं खाते।" जब मैंने पूछा कि क्या मटन खाना गलत बात है तो कुछ जवाब नहीं दिया।

मैंने बाकि बच्चों को चर्चा में जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया तो 3-4 बच्चे बोले, "नहीं दीदी, हम भी खाते हैं। हमारे पापा के दोस्त भी मुसलमान हैं और वे ईद पर हमारे पापा को मटन भी देते हैं।" इस चर्चा के बाद जो बच्चा मटन नहीं खाता था, वह शुरू में जैसे स्वाभिमान से बोल रहा था, उसके परे अभी थोड़ा चुप-सा हो गया था। उसे सहज करने के लिए मैंने चर्चा को कहानी की तरफ मोड़ते हुए, कहानी का नाम बताते हुए पूछा कि कहानी में क्या होगा। बच्चे कहने लगे, "ईद मनाएँगे।" एक आवाज़ आई, "दो ईद होती हैं, एक में बकरा काटते हैं और एक में सिवईं बनाते हैं।" मन में सन्तोष हुआ यह सुनकर कि बच्चे मुस्लिम त्यौहार और खाने के दूसरे प्रकार को भी जानते हैं।

फिर कहानी सुनाना शुरू की और पूरी कहनी सुनाने के दौरान बस एक

जगह रुके, जब कहानी में इस्मत की माँ हबीबा कहती है - 'मुझे शीर कुरमा बनाना है'। मैंने पूछा, "शीर कुरमा क्या होता है?" तो एक लड़की ने कहा, "कुछ मटन का बनता होगा।" मैंने पूछा, "पक्का?" तो बाकियों ने भी कहा, "हाँ, होता होगा।" मुझे थोड़ा अचरज हुआ क्योंकि यह ऐसा इलाका तो नहीं था जिनका मुस्लिम परिवारों से कोई जुड़ाव ही न हो और 9 बच्चों में से एक ने भी नहीं कहा कि यह मटन से नहीं बनता। फिर मैंने बच्चों को बताया कि शीर कुरमा सूखे मेवों और दूध से बनता है और खीर की तरह मीठा होता है। एक बच्चे ने पूछा, "सूखा मेवा क्या होता है?" तो मैंने बताया, "काजू, बादाम, किशमिश इन सबको सूखा मेवा कहते हैं।"

कहानी के बाद चर्चा में 'कहानी कैसी लगी' और 'किसको क्या पसन्द आया' से बात शुरू की तो ज़्यादातर बच्चों ने कहा कि जब पेंट छोटी हो जाती है तो मज़ा आता है। एक बच्चे ने कहा, "मुझे शीर कुरमा अच्छा लगा।" एक बच्चे ने यह भी कहा, "जब सब एक साथ मिलकर मस्जिद जा रहे थे तो मुझे अच्छा लगा।" मैंने पूछा, "आपको क्या नया पता चला?" तो 3-4 आवाज़ें एक साथ आईं, "शीर कुरमा और मीठी ईद पर क्या होता है।" और एक बच्चे ने कहा, "अस्सला-वालेकुम का मतलब भी समझ आया।"

## बातचीत का विश्लेषण

दोनों जगह कहानी सुनाने के अनुभव अलग-अलग रहे। जहाँ मुस्लिम बच्चों ने कहानी में गहरी दिलचस्पी दिखाई और वे खुद को कहानी से जोड़ पा रहे थे, वहीं गैर-मुस्लिम बच्चे अनुमान और सुनी हुई बातों के आधार पर जवाब दे रहे थे।

दोनों ही जगहों के अनुभवों के आधार पर यह समझ बनी कि वर्तमान में पास-पास रहने पर भी अलगाव की स्थितियाँ ज़्यादा हैं जो बच्चों में भी दिखाई देती हैं। कुछ पूर्वाग्रह जैसे मुस्लिम हैं तो मांस ही खाते होंगे, ये बातें बच्चों के मन में भी चलती हैं। इन पर चर्चाएँ करते रहने से बच्चों को अलग-अलग संस्कृतियों को समझने के मौके मिलेंगे और उनके पूर्वाग्रहों पर भी वे तार्किक होकर सोच पाएँगे। किसी एक पक्ष के विचार के हावी होने से बच पाएँगे और उनके विचारों में हम नए विचारों को जोड़ पाएँगे।

मैंने मेरी दो अन्य साथियों जिनमें एक हिन्दू और दूसरी ईसाई धर्म को मानती है, से उत्सुकतावश पूछा, "शीर कुरमा एक मुस्लिम व्यंजन है, बताओ कैसे बनता होगा?" तो दोनों ने ही कहा कि चिकन से बनता होगा जबकि क्षीर का मतलब दूध होता है। हम शब्द को ठीक से पढ़ें तो कुछ सही अनुमान लगा सकते हैं पर प्रायः यह देखने में आता है कि पूर्वाग्रह तार्किक अनुमान पर भारी होते हैं। इसी तरह मुझे याद आया, मैंने एहसान नगर पुस्तकालय में लक्की को जो पारधी समुदाय का बच्चा है, नाबिया किताब पढ़ने को दी तो उसने यह कहते हुए वापस कर दी थी कि "मुझे मुसलमान की किताब नहीं पढ़ना।" फिर बात करने पर वह पढ़ने के लिए मान गया था।

एक तरफ जहाँ मुझे यह किताब विभिन्न समुदायों में मुस्लिम परिवार की सामान्यता दिखाने के लिए बहुत ही अच्छी लगी, मेरे समूह की पुस्तकालय चलाने वाली मुस्लिम कार्यकर्त्ता, अफसाना को यह किताब बिलकुल नहीं जमी। किताब के आखिरी पन्ने पर पूरा परिवार मस्जिद की तरफ देख रहा है। अफसाना का कहना था कि औरतें मस्जिद के अन्दर नहीं जातीं, और अगर कभी जाती भी हैं तो ऐसे बाल खुले रखे हुए नहीं दिखती हैं। अफसाना की बात से मैं भी अपनी समझ पर वापस सोचने के लिए मजबूर हुई।

क्या यह किताब सच में किसी अन्य समुदाय की बारीकियों को ऐसे मासूमियत में पेश करते हुए नज़रअन्दाज़ कर देती है? यह भी समझ में आया कि इसके कुछ पहलू लोगों को स्वीकार्य नहीं हैं। मुझे यह भी महसूस हुआ कि हमारे बाल-साहित्य में बहुत कम किताबें हैं जो एक संस्कृति-विशेष को प्रस्तुत करती हैं। हम उन्हें नकारना नहीं चाहते, पर

बहुत विकल्प भी नहीं हैं जिनसे मैं तुलना कर पाऊँ।

रूदीन सिम्स बिशप (1990) ने कहा था कि "किताबें कभी खिड़कियाँ होती हैं, जो एक दूसरी दुनिया की झलक देती हैं। कभी ये खिड़कियाँ, काँच के दरवाज़ों जैसी होती हैं, जिनके अन्दर-बाहर पाठक जा पाते हैं, वे लेखक द्वारा रची दुनिया में कुछ देर के लिए जुड़ पाते हैं। और कभी-कभी ये हमारे लिए आइने जैसी होती हैं, और इनमें हम अपने आप की पुष्टि कर पाते हैं।"

*इस्मत की ईद* कहीं-न-कहीं उन सीमित किताबों की श्रेणी में है जो एक समुदाय की पुष्टि कर रही है और दूसरे को उसके कुछ सतही पहलुओं को देखने का मौका दे रही है, और इसलिए आज के समय में बहुत महत्वपूर्ण किताब है। लेकिन अभी मुझे अपने बच्चों तक ऐसी और किताबें ले जाने का बेसब्री से इन्तज़ार है जिनसे मैं उन्हें मुस्लिम परिवार के बच्चों की छोटी-छोटी खुशियों और परेशानियों, डर और चिन्ताओं, बाहर से अपमान और अन्दर के संघर्ष तक ले जा पाऊँ। शायद तभी मेरे बच्चे किताब के माध्यम से ही सही, लेकिन एक दूसरे समुदाय के बच्चों के दोस्त बन पाएँगे, और उनके जीवन की कहानियों में डूबते हुए काँच के दरवाज़े को शायद पार कर पाएँगे।

---

**नीतू यादव:** *मुस्कान* संस्था, भोपाल के शिक्षा समूह में पिछले 12 वर्षों से कई कार्यक्रमों का हिस्सा रही हैं। वर्तमान में, बतौर पुस्तकालय समन्वयक काम कर रही हैं। 2017 में वे पराग द्वारा संचालित 'लायब्रेरी एजुकेटर कोर्स' की प्रतिभागी थीं।

सभी चित्र *इस्मत की ईद* किताब से साभार।

**सन्दर्भ:**

1. बाल साहित्य में समावेशन की सम्भावनाओं की खोज - ऊषा मुकुंदा
2. बाल साहित्य में विविधता की ज़रूरत- सेमिनार अगस्त 2019, *मुस्कान* का अवधारणा लेख - शिवानी तनेजा
3. बच्चों के विकास में साक्षरता और किताबों का महत्व: बौद्धिक, भावात्मक एवं सामाजिक आयाम - डेनीस वॉन स्टोकर

# ज्ञान का स्वामित्व और नाटक प्रक्रिया

मौअज़्ज़म अली

चित्र: सिमिन डोमाल्ड

'ज्ञान का स्वामित्व' जिसके अन्तर्गत ये माना जाता है कि एक बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है, की रोशनी में, नाटक की प्रक्रिया में इसको हासिल करने के कुछ अनुभव और उनपर चर्चा।

ज्ञान का स्वामित्व' के क्या मायने हैं? इस प्रश्न को शिक्षा में कार्य करने वालों तथा शिक्षकों से पूछे जाने पर यह बात निकलकर आती है कि "अनुभवात्मक प्रक्रिया में जाकर जब किसी बच्चे या बच्चों के समूह द्वारा स्वयं अपने ज्ञान का निर्माण किया जाता है, और उन्हें स्वयं भी यह मालूम होता है कि उन्होंने इस ज्ञान को अपने अनुभव और समझ से प्राप्त या निर्मित किया है, यह हमारा स्वयं का निर्मित ज्ञान है और हम अपने शब्दों में इसे व्यक्त या उसकी व्याख्या कर सकते हैं तो उसे 'ज्ञान

का स्वामित्व' कहा जा सकता है।"

यह ज़रूरी नहीं कि इससे पहले किसी को वह ज्ञान नहीं था बल्कि यह ज्ञान पहले से भी विद्यमान हो सकता है, बस इस बार इसे स्वयं हासिल किया गया है। इसको एक उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है कि हमने किसी स्थान या इमारत या वस्तु के बारे में बहुत सुना है। इसे चित्रों में भी देखा है, इसके बारे में पढ़ा भी है तो हम इसके बारे में बहुत-सी जानकारी रखते हैं। अगर कोई इसके बारे में कुछ पूछता है तो हम वही बात बताते हैं जो हमने पढ़ी या सुनी है। हाँ, ये बात और है कि इन जानकारियों को हम अपने शब्दों में भी बयान कर सकते हैं लेकिन उस जगह पर जाने, अपनी आँखों से देखने या अपने हाथों से छूने के एहसास को हम बयान नहीं कर सकते।

किसी जगह पर जाकर, किसी इमारत को अपनी आँखों से देखकर, या किसी वस्तु को अपने हाथों से छूकर, चखकर या सूंघकर जो अनुभवात्मक अनुभूति होती है, उसे केवल जानकारियों से नहीं समझा जा सकता है। हाँ, हम अपने पूर्वज्ञान के आधार पर कुछ अन्दाज़ ज़रूर लगा सकते हैं। तथ्यात्मक जानकारियों को तो पूर्ण विश्वास के साथ साझा किया जा सकता है परन्तु अनुभवात्मक अनुभूति या एहसास को इसकी गैरहाज़री में बहुत विश्वास के साथ वर्णित नहीं किया जा सकता। मगर इसका मतलब यह बिलकुल नहीं है कि हर ज्ञान अनुभव के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हाँ, अनुभव उसको एहसास से लिपटे अपने शब्द ज़रूर मुहैय्या कराता है।

वैसे तो रचनावाद की प्रक्रिया अपनाते हुए किसी भी शिक्षण विधि द्वारा कक्षा में इस बात को स्थापित करना कठिन है कि बच्चों ने अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं किया है और वे इस पर अपना स्वामित्व भी रखते हैं, लेकिन यहाँ अपने शिक्षण अनुभव के आधार पर हम नाटक की प्रक्रिया में इसकी सम्भावना की छानबीन करेंगे।

शिक्षा में नाट्यकला के क्षेत्र में कार्य करने वाले अभ्यासकारों और विद्वानों जैसे गैबिन बोल्टन और डोरोथी हीथकोट ने शिक्षा में नाट्यकला को दो भागों में विभाजित किया है – प्रस्तुति नाटक और प्रक्रिया नाटक। प्रस्तुति नाटक में कक्षा में बच्चों के साथ नाटक को दर्शकों के समक्ष कला के तौर पर प्रदर्शन के उद्देश्य से तैयार किया जाता है, और प्रक्रिया नाटक में कक्षा में बच्चों के साथ नाटक से जुड़ी सभी प्रक्रियाएँ शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सीखने के आशय से की जाती हैं जिसमें प्रदर्शन के लिए कोई स्थान नहीं होता।

इस आधार पर 'ज्ञान के स्वामित्व'

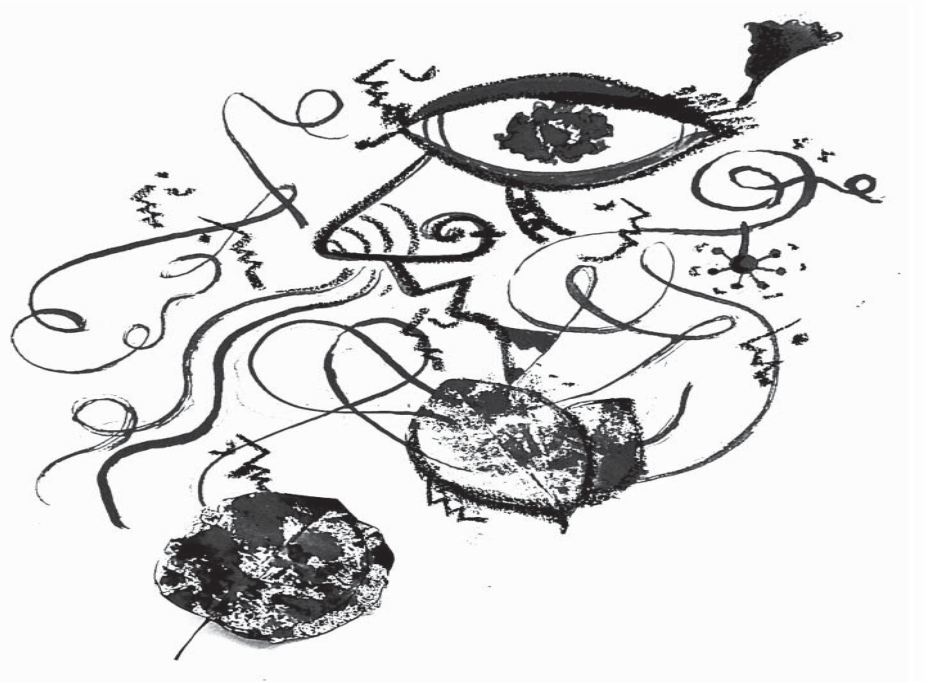

में नाटक प्रक्रिया की भूमिका को सोचा जाए तो प्रस्तुति नाटक की बजाए प्रक्रिया नाटक की कक्षा के ऐसे कई उदाहरण दिमाग में गूंजते हैं, जिसके आधार पर विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि प्रतिभागी या प्रतिभागियों ने 'ज्ञान का स्वामित्व' हासिल किया। लेकिन इससे पहले प्रक्रिया परक नाटक की अवधारणात्मक समझ बनाने का प्रयास करते हैं।

## प्रक्रिया नाटक की अवधारणा

प्रक्रिया नाटक एक ऐसी गतिशील एवं सशक्त कार्यप्रणाली है जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी एक साथ मिलकर काम करते हुए एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करते हैं तथा इस काल्पनिक दुनिया के रहते हुए किसी समस्या, परिस्थिति, विषय, घटना या घटनाओं की श्रृंखला आदि की जाँच-पड़ताल और विश्लेषण करते हैं। यह प्रक्रिया दर्शकों के लिए प्रदर्शन को ध्यान में रखकर नहीं

बल्कि खुद की समझ को विकसित करने एवं विचारों या ज्ञान का निर्माण करने के लिए की जाती है।

इस नाटक प्रक्रिया में विद्यार्थी अपने अनुभव के आधार पर जीवन से जुड़ी बहुत-सी भूमिकाएँ निभाते हैं तथा इस भूमिका निभाने की प्रक्रिया में किसी और के जीवन को जीते हुए उस पर सोचने, समझने व अन्दाज़ा लगाने की कोशिश करते हैं। साथ ही, अन्य बहुत-सी चिन्तनशील गतिविधियों में संलग्न होते हुए पहले से स्थापित खुद के दृष्टिकोण से परे सोचने एवं एक ही मुद्दे पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रक्रिया नाटक के अन्तर्गत यह प्रयास किया जाता है कि प्रतिभागी वास्तविक दुनिया से हासिल समझ, विचार, अनुभव, परिस्थिति को लेकर एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करे और इस प्रक्रिया में इनकी पुन: रचना करते हुए एक अनुभवात्मक समझ या ज्ञान का निर्माण करे और उस ज्ञान पर स्वामित्व हासिल करे।

'ज्ञान के स्वामित्व' को समझने के लिए पहले, 'ज्ञान क्या है?' को समझना होगा। इस विषय पर बहुत-से दार्शनिकों और अभ्यासकर्ताओं ने ज्ञान को मुख्य रूप से दो हिस्सों में बाँटकर समझने की कोशिश की है, 'सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहारिक ज्ञान।' इसी सन्दर्भ में लेमोस नोह की किताब *एन इंट्रोडक्शन टू थियरी ऑफ नॉलेज* की व्याख्याओं को समझते हैं जिसमें लेखक ने ज्ञान को तीन हिस्सों में बाँटा है।

1. **सैद्धान्तिक ज्ञान** - इसका उदाहरण देते हुए लेखक समझाता है कि इस तरह का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को किसी व्यक्ति/वस्तु/जगह की भरपूर जानकारी होती है मगर वो उस व्यक्ति से मिला नहीं होता, या उस वस्तु को देखा या छुआ नहीं होता, या उस जगह पर गया नहीं होता।
2. **व्यवहारिक या अनुभवात्मक ज्ञान** – इसकी बात करते हुए लेखक समझाता है कि ये जानकारियों पर नहीं बल्कि पहचान या अनुभव पर आधारित होता है। इस तरह का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को शायद किसी व्यक्ति/वस्तु/जगह की भरपूर जानकारी न हो मगर वह उस व्यक्ति को पहचानता है, उससे मिला हुआ है या उस वस्तु को देखा/छुआ है या उस जगह पर गया हुआ है।
3. **'कैसे' ज्ञान** – इस तरह के ज्ञान की बात करते हुए लेखक कहता है कि हो सकता है किसी व्यक्ति को यह तो मालूम हो कि गिटार कैसे पकड़ा/बजाया जाता है, उसके कौन-से तार से कौन-सी ध्वनि निकलती है आदि मगर वो व्यक्ति स्वयं उसको बजाने में असमर्थ होता है। इसी तरह एक व्यक्ति, साइकिल कैसे चलाई जाती है, के बारे में तो विस्तारपूर्वक

व्याख्या कर सकता है परन्तु वह स्वयं साइकिल चला नहीं सकता।

इसके साथ ही जॉन रे नामक एक दार्शनिक की पंक्तियों को भी लिया जा सकता है जिसमें उन्होंने 'ज्ञान के स्वामित्व' को 'बोध' (knowing) कहकर पुकारा है तथा 'ज्ञान' और 'ज्ञान के स्वामित्व' को कुछ इस तरह से समझाया है:

1. ज्ञान - ज्ञान संगठित सूचना से ज़्यादा कुछ नहीं है। यह एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो जानकारी प्राप्त करने से आती है।
2. बोध - बोध एक भावनात्मक प्रक्रिया है। यह स्वामित्व से आता है। हम लगातार ज्ञान से बोध की ओर बढ़ते हैं - शिक्षा से स्वामित्व तक। स्वामित्व मुख्यत: तीन तरह से आता है: अध्ययन, प्रयोग और पुनरावृत्ति।

जॉन रे के ऊपर दिए गए विचारों को पढ़कर 'ज्ञान के स्वामित्व' के स्थान पर 'बोध' या 'जानना' ज़्यादा आसान और समझ में आने वाला शब्द लगता है और इस शब्द को पकड़कर आगे की बात की जा सकती है।

'ज्ञान का स्वामित्व' पर कोई किताब या कोई सटीक लेख या शोध कार्य बमुश्किल ही मिलता है, परन्तु *डिवेलेपिंग ड्रामा इन इंग्लिश* नाम से शिक्षकों के लिए एक किताब में 'ज्ञान का स्वामित्व' को लेकर यह लिखा है।

'सतही रूप से और गहराई से सीखने के बीच का महत्वपूर्ण अन्तर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्तर पर आता है - सामान्य जानकारी का व्यक्तिगत ज्ञान में रूपान्तरण जो गहन और टिकाऊ है क्योंकि यह आन्तरिक प्रेरणा पर आधारित है, अर्थात यह व्यक्तिगत रूप से महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। किसी भी विषय की गहराई में जाने के लिए चिन्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है - यानी वह प्रक्रिया जिसके द्वारा सूचना और अनुभव को समावेशित किया जाता है और ज्ञान उत्पन्न होता है। चूँकि यह प्रक्रिया व्यक्तिगत है, यह व्याख्या करने के लिए आत्मविश्वास पैदा करती है और इसलिए स्वतंत्र रूप से कार्य करने का आत्मविश्वास।'

इससे 'ज्ञान का स्वामित्व' क्या है, ये तो समझ में आता है परन्तु 'ज्ञान के स्वामित्व में नाटक की भूमिका' की इसमें बात नहीं होती है। लेकिन अपनी अब तक की समझ के अनुसार मैं इसे कुछ बिन्दुओं द्वारा समझने-समझाने का प्रयास करता हूँ –

- नाटक की प्रक्रिया के अन्तर्गत वास्तविक जीवन पर आधारित किसी परिस्थिति, मुद्दे या समस्या के आधार पर काल्पनिक दुनिया का निर्माण करना।
- इन परिस्थितियों, मुद्दों, समस्याओं के बारे में बात करना, सोचना एवं महसूस करना।

- कल्पना का सहारा लेते हुए खुद को उस परिस्थिति में डालने एवं उस माहौल को खुद पर ओढ़ने की कोशिश करना।
- नाटक की प्रक्रिया में जाकर उसे पुनः रचना, अनुभव करना तथा जीने की कोशिश करना एवं जीते हुए समझने की कोशिश करना, हल ढूँढ़ना और निर्णय लेना ।
- इस तरह खोजने, जानने और समझने की यात्रा में 'ज्ञान का निर्माण' करना और उस पर स्वामित्व स्थापित करना तथा हाथो-हाथ उसे प्रतिबिम्बित करना।

## नाटक प्रक्रिया का उदाहरण

नाटक प्रक्रिया के अन्तर्गत 'ज्ञान के स्वामित्व' को और बेहतर रूप से समझने के लिए किसी कक्षा के उदाहरण के साथ समझना होगा। यह उदाहरण है 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के एक विभाग 'संस्कार रंग टोली' (Theatre in Education Company) जो मुख्य रूप से बच्चों के साथ और बच्चों के लिए ही कार्य करती है जिसकी शुरुआत बैरी जॉन द्वारा 1989 में की गई थी। संस्कार रंग टोली द्वारा प्रत्येक वर्ष बच्चों के लिए महीने भर की ग्रीष्मकालीन नाट्य कार्यशाला का आयोजन किया जाता है जिसमें बच्चों के साथ कार्य करने के लिए चार विषयों को चार हफ्तों में विभाजित किया जाता है - स्वयं, परिवार, शिक्षा और समाज। प्रस्तुत उदाहरण आठ से दस वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों की कक्षा के चौथे हफ्ते के एक दिन का है, जिसमें 'मैं और समाज' विषय पर कार्य चल रहा है।

इस कार्यशाला में चौथे हफ्ते के दौरान, जिस समाज या परिवेश में हम रहते हैं, के प्रति समझ बनाने को लेकर काम चल रहा था। हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ हमारे आसपास कौन-कौन और किस तरह के लोग रहते हैं, पर बातचीत चल रही थी जिसमें बातों ही बातों में बात अलग-अलग धर्मों पर होने लगी और चलते-चलते युद्ध पर पहुँच गई। युद्ध पर बात पहुँचते ही हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की बात होने लगी जिसमें यह बात साफ तौर पर निकलकर आई कि पाकिस्तान हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है, उसे युद्ध में हराकर खत्म कर देना चाहिए। ये शायद वे बातें थीं जो बच्चों ने अपने आसपास अपने परिवार और समाज में होते हुए सुनी थीं और अपनी उसी समझ को यहाँ रखा था। मैंने जानबूझकर इस बात को बगल में सरकाते हुए बच्चों के समक्ष एक प्रश्न रखा, "युद्ध होना चाहिए या नहीं?"

इस प्रश्न पर ज़्यादातर बच्चों ने युद्ध के पक्ष में अपनी बात रखी। फिर प्रश्न आया कि "क्यों होना चाहिए?" इस प्रश्न पर अधिकतर बच्चों के अनुसार यह एक बहादुरी का काम था, तथा पिस्तौल और बम उनका सबसे बड़ा आकर्षण था। कुछ देश की

रक्षा के लिए दुश्मनों को मार गिराना चाहते थे, ताकि कोई भी हमारे देश की तरफ देखने की हिम्मत न करे। इसमें खास तौर से फिल्मों का प्रभाव समझा जा सकता था क्योंकि कुछ फिल्मों के उदाहरण भी आए, परन्तु कुछ बच्चे जो पशो-पेश में थे कि युद्ध होना चाहिए या नहीं, उनकी संख्या बहुत कम थी। वे बच्चे लगभग दोनों तरफ ही थे। इस तरह दस बारह मिनट युद्ध होने को लेकर बात होती रही। जो दो-चार बच्चे युद्ध के पक्ष में नहीं थे, उनके पास से कोई खास तर्क निकलकर नहीं आ रहे थे।

अचानक एक बच्चे ने यह बात सबसे अलग, बड़े दमदार तरीके से रखी, "युद्ध नहीं होना चाहिए।" उसने कहा, "इससे फौजियों के अलावा बहुत-से बेकसूर लोग भी बेवजह मारे जाते हैं। लोग बेघर हो जाते हैं। लोगों और देश, दोनों का बहुत नुकसान होता है।" इस तरह की बात निकलकर आने की उम्मीद मुझे तो नहीं ही थी, मगर जैसे ही ये बात निकलकर आई तो कशमकश में फँसे सभी बच्चे इस विचार के साथ हो लिए और दूसरे पाले में युद्ध को बहादुरी का एक रूप मानने वाले बच्चे ज़रा ढीले पड़ गए। इस बात को

उन्होंने भी माना तो मगर देश की रक्षा के लिए इसे ज़रूरी भी माना। अब दोनों तरफ की संख्या लगभग बराबर ही-सी थी। काफी बहस हुई और कुछ स्पष्ट निकलकर नहीं आ रहा था। वैसे भी, युद्ध होना चाहिए या नहीं, यह बातचीत का कोई आसान मुद्दा तो था नहीं, वह भी आठ से दस साल के बच्चों के लिए। बड़े-बड़े इसमें फँस जाते हैं। बच्चे इस पर बात कर रहे हैं, यह क्या कम है।

## बच्चों द्वारा विश्लेषण

जब वे काफी देर तक इस गर्मा-गर्म बहस में उलझे तो मैंने बच्चों को दो-चार छोटे समूहों में बाँट दिया और जो समूह युद्ध के नुकसान पर अड़े थे, उनको युद्ध से होने वाले फायदे के बारे में लिखने को कहा और अन्य दो समूहों को युद्ध से होने वाले नुकसान के बारे में लिखने को कहा। इस पर बात करते हुए उन्होंने अपने-अपने समूहों में करीब आधा घण्टा लिया और आधे घण्टे बाद चारों समूह अपने-अपने बिन्दुओं के साथ बड़े समूह में इकट्ठा हुए। सभी ने बड़े समूह में अपने-अपने बिन्दु साझा किए। इन बिन्दुओं में लगभग वही बातें निकलकर आईं जिस पर पहले ही काफी देर तक बहस होती रही थी, मगर एक बिन्दु उसमें से यह निकलकर आया कि युद्ध में चाहे कोई भी हारे या जीते, नुकसान दोनों तरफ ही होता है।

फिर ये बात निकल पड़ी कि हारने वाले का ज़्यादा नुकसान होता है या जीतने वाले का। सम्भावित तौर पर यही बात रही कि हर तरफ से हारने वाले देश का नुकसान ही ज़्यादा होता है। यह बात तो थी देश के स्तर पर मगर अभी तक भी ये दो हिस्सों में ही था कि कुछ का कहना था कि युद्ध होना चाहिए और कुछ का कहना था कि नहीं। फिर मैंने ही एक बात रखी, "चलो, युद्ध में हारने या जीतने पर किसी देश को क्या नुकसान होता है, इसको छोड़ते हैं, और मारे गए दुश्मन सैनिकों तथा देश के सैनिकों, दोनों के घरों में जाते हैं और उनके घरों का हाल देखते हैं।"

इस प्रकार अकेले-अकेले सोचने और उनके घरों के हालात की कल्पना करने के लिए मैंने आठ-दस मिनट उनको छोड़ दिया और साथ में यह बात भी रखी कि "मान लो, हमारे घर का ही कोई सदस्य युद्ध के मैदान में मारा गया हो तो हमें कैसा लगेगा? हमारे घर का माहौल कैसा होगा? शायद किसी के पिता या चाचा या मामा या बड़े भैया या कोई और रिश्तेदार।"

फिर सबको इकट्ठा किया गया और जो दो समूह युद्ध चाहते थे, उनको दुश्मन सैनिकों के घर के हालात पर नाटक के कुछ दृश्य तैयार करने और बाकी दो को अपने देश के सैनिकों के घर के हालात पर नाटक तैयार करने को कहा गया।

इस पर बात करने और छोटा-सा नाटक तैयार करने के लिए बच्चों ने करीब पैंतालिस मिनट लिए और उसके बाद सभी ने एक-एक करके अपनी-अपनी नाटकीय प्रस्तुति दी। थोड़े-बहुत दृश्यों को छोड़कर सभी घरों का माहौल लगभग एक-ही-सा था। मातमी और दुःख भरा। इन नाटकीय प्रस्तुतियों के बाद हमारी कक्षा का माहौल भी कुछ ऐसा ही हो गया था। जब सभी प्रस्तुतियाँ खत्म हो गईं तो बातचीत के लिए सभी गोल दायरे में बैठे और मैंने ही धीरे-से यह बात रखी, "अब आपको क्या लगता है, कैसा महसूस हो रहा है?" थोड़ी देर तक कोई कुछ भी नहीं बोला। कुछ देर के बाद माहौल को हल्का करते हुए मैंने बोला, "आप सभी ने बहुत अच्छी प्रस्तुति की, हम सभी के लिए ताली बजाते हैं।"

अब सभी के चेहरे पर मुस्कान थी और सभी ने ज़ोरदार तालियाँ बजाईं। मैंने फिर पूछा, "अब आपको क्या लगता है कि युद्ध होना चाहिए या नहीं?" सभी का जवाब था कि युद्ध नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे सभी का नुकसान होता है।

तो इस प्रक्रिया में अपने अनुभव और समझ के अनुसार बच्चों ने कक्षा में एक काल्पनिक संसार या परिस्थिति को रचा और उस परिस्थिति में अपनी-अपनी भूमिका लेते हुए, उसको जीते हुए वैचारिक और भावनात्मक रूप से अनुभव किया और इससे उनको इस एहसास को पैदा करने में मदद मिली कि युद्ध में कोई भी हारे या जीते, मगर इन्सान के तौर पर नुकसान दोनों तरफ ही होता है।

फिर बातों ही बातों में यह निकलकर आया कि "हमें लगता तो है कि एक देश दूसरे देश से लड़ रहा है मगर दोनों तरफ असल में इन्सान ही इन्सान को मार रहा होता है। जिस तरह हमारे लिए दूसरा देश दुश्मन होता है वैसे ही वहाँ के लोगों के लिए हम होते हैं। असल में जीत किसी की भी हो मगर किसी भी युद्ध में मरते इन्सान ही हैं।" शायद इस आयु समूह के बच्चों के हिसाब से ये शब्द बहुत बड़े लग रहे हों मगर चूँकि बच्चों ने नाटक की प्रक्रिया में जाकर यह अनुभव किया था या यूँ कहें कि जिया था, इसलिए उस वक्त उनकी ज़ुबान से ये शब्द बिलकुल भी बड़े नहीं लगे थे।

इस तरह इस नाटक की प्रक्रिया में बच्चों ने अपने लिए एक ज्ञान का निर्माण किया कि युद्ध नहीं होना चाहिए, इससे सभी का नुकसान होता है और इस पर स्वामित्व भी हासिल किया क्योंकि यह इनके पास किसी व्यक्ति या किताब के द्वारा एक जानकारी या उपदेश के रूप में नहीं आया था बल्कि उन्होंने स्वयं अपने अनुभव और समझ के अनुसार इसे हासिल किया था। ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि यह बात हमेशा

उनके साथ रहेगी और उम्र के किसी भी पड़ाव में जब भी उनके सामने युद्ध के बारे में बात होगी तो सम्भव है कि वे अपने इस पक्ष को भी रखेंगे या इसके बारे में सोचेंगे, क्योंकि इस एहसास को उन्होंने जानकारी के द्वारा नहीं बल्कि नाट्यकला की प्रक्रिया द्वारा एक अनुभव हासिल करके प्राप्त किया है।

वैसे इस प्रक्रिया में एक बात तो पक्के तौर पर कही जा सकती है कि इस तरह की प्रक्रिया में एक शिक्षक की बहुत बड़ी भूमिका होती है। एक शिक्षक जिस विश्वास के साथ आता है, वही विश्वास बच्चों तक भी स्थानान्तरित होता है। चाहे वह नाटक की प्रक्रिया ही क्यों न हो। इसलिए किसी भी विषय पर एक शिक्षक का नज़रिया बहुत मायने रखता है।

---

**मौअज़्ज़म अली:** 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। फिलहाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

**सभी चित्र: शैलेश गुप्ता:** आर्किटेक्ट और चित्रकार जो आज भी बचपन को संजोए रखना चाहते हैं। एमआईटीएस, ग्वालियर से आर्किटेक्चर की पढ़ाई। कहानियाँ सुनने और सुनाने का शौक है। भोपाल में रहते हैं।

यह पर्चा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में 'ड्रामा इन एजुकेशन' की टीम द्वारा इसी विषय पर शिक्षकों और शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए एक कोर्स विकसित करने के दौरान लिखा गया था। इस टीम का मानना था कि इस कोर्स को तैयार करने के लिए केवल नाटक और इसकी प्रक्रिया ही नहीं, बल्कि शिक्षा के लक्ष्य एवं परिप्रेक्ष्य, एनसीएफ-2005 एवं कला शिक्षा, सीखने के सिद्धान्तों (Learning Theories) आदि क्षेत्रों एवं विचारों का भी गहन अध्ययन किया जाए और इन पर चर्चाएँ करते हुए, एक टीम के तौर पर समझ विकसित करने का प्रयास किया जाए ताकि शिक्षा से जुड़े सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए यह कोर्स तैयार हो, जिसकी कक्षाकक्ष में बच्चों के सीखने में एक महत्वपूर्ण और गतिशील माध्यम के रूप में पैरवी की जा सके। इसी प्रक्रिया में मेरे हिस्से 'ज्ञान का स्वामित्व' विषय आया और इस विषय पर समझ बनाने में मेरी मदद कृष्ण कुमार की पुस्तक *शिक्षा और ज्ञान* ने की, साथ ही गूगल की मदद भी ली गई, परन्तु मेरे इस पर्चे का एक प्रमुख आधार लेमोस नोह की किताब *एन इंट्रोडक्शन टू थियरी ऑफ नॉलेज* रही।

# महाराष्ट्र के सरकारी-अनुदान प्राप्त सेमी-इंग्लिश स्कूलों से क्या सीख सकते हैं?

अरविंद सरदाना

फ़ोटो: राजेश देशमुख

हाल ही में, आंध्र प्रदेश हाई कोर्ट ने सरकार द्वारा दिए गए आदेश कि सभी सरकारी स्कूलों को अँग्रेज़ी माध्यम बनाया जाए, को खारिज कर दिया है। अभिभावकों की आकांक्षाओं के नाम पर हम कई बार कुछ ऐसे विकृत विकल्प चुनते हैं, इसलिए जागरूक सार्वजनिक बहस की बहुत ज़रूरत है।

महाराष्ट्र में कई स्कूलों में सेमी-इंग्लिश स्कूलों की परिपाटी रही है। यह चलन शायद तीन दशकों से चला आ रहा है। ये स्कूल थे तो मराठी माध्यम, परन्तु माध्यमिक शाला में विज्ञान और गणित के लिए अँग्रेज़ी पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करना आरम्भ कर देते थे। शुरुआत में यह परिपाटी, शहरी व तालुका के कस्बाई स्कूलों द्वारा अपनाई गई। इन्हें सरकारी अनुदान प्राप्त था और ये स्थानीय ट्रस्ट द्वारा संचालित किए जाते थे। वर्ष 2005 में राज्य ने कुछ सरकारी स्कूलों को अर्ध-अँग्रेज़ी यानी सेमी-इंग्लिश नीति अपनाने की अनुमति दी। आज यह चलन सरकारी ग्रामीण स्कूलों द्वारा भी अपनाया जा रहा है, जिस कारण बच्चे इन्हीं स्कूलों में टिके हुए हैं। प्राइवेट स्कूल की तरफ पलायन कम हुआ है।

## दो विरोधाभासी परिदृश्य

दो दशक पहले के महाराष्ट्र के एक दूर-दराज़ स्थित तालुका की कल्पना करें, जहाँ न तो अभिभावकों को अँग्रेज़ी की पृष्ठभूमि थी, न अँग्रेज़ी किताबों से कोई परिचय। यहाँ के परिवेश में अँग्रेज़ी पुस्तकें या अन्य छपी साम्रगी उपलब्ध नहीं थी। ऐसी स्थिति में सेमी-इंग्लिश माध्यम सरकारी-अनुदान प्राप्त स्कूल से क्या तात्पर्य? इन स्कूलों में विज्ञान और गणित की पाठ्यपुस्तकें अँग्रेज़ी में होती हैं और अन्य विषयों की पाठ्यपुस्तकें मराठी में। अँग्रेज़ी एक अलग विषय के रूप में भी पढ़ाया जाता है। इन बच्चों का प्राथमिक शिक्षण मराठी में होता, जो कि उनकी घरेलू या क्षेत्रिय भाषा थी। महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि कक्षा में मराठी का उपयोग किया जाता था चाहे समझाना हो, सवाल पूछना हो या बातचीत करना हो। शिक्षक पाठ्यपुस्तक अँग्रेज़ी में पढ़ते थे पर समझाते मराठी में। एक द्वि-भाषी सांस्कृतिक प्रक्रिया सब दूर स्वीकारी जाती रही, हालाँकि शिक्षण पद्धति अधिकांश समय पारम्परिक रहती थी। जब बच्चे अँग्रेज़ी पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने का प्रयास करते तो वे अँग्रेज़ी शब्दावली से परिचित हो पाते और उनका अर्थ मराठी में समझते व सोचते।

ऐसे स्कूलों के कुछ पूर्व-छात्रों (जो आज मेरे सहकर्मी हैं) से बात करके यह कह सकते हैं कि इन पाठ्यपुस्तकों को पढ़ना उनके लिए आसान नहीं था। वे न केवल कठिन शब्दों के अर्थों को लिखने और शब्दावली को याद करने से जूझा करते थे, उनमें प्रश्नों का जवाब अँग्रेज़ी में देने का खौफ बना रहता था। परन्तु, पाठ्यपुस्तकों से जूझना उनके लिए ज़रूरी था। शिक्षकों के प्रयास द्वारा वे धीरे-धीरे इस नई भाषा से परिचित होते चले गए। अँग्रेज़ी में लिखना एक बड़ी चुनौती थी और कई सहकर्मियों के लिए आज भी है। परन्तु, विज्ञान या गणित की परिचित पुस्तक को आत्मविश्वास से पढ़ने में तेज़ी-से बढ़ोतरी हुई है।

जैसे कि मेरे सहकर्मी बताते हैं कि तीन से चार वर्षों के दौरान वे आत्मविश्वास से इस सांस्कृतिक बाधा को पार कर पाए कि वे अँग्रेज़ी में उच्च शिक्षण ले पाएँगे या नहीं। इस दौरान वे सहपाठियों और शिक्षकों के साथ तकनीकी बातचीत मराठी में करने के परिवेश को संजोते रहे। जो अँग्रेज़ी उन्होंने सीखी, वह धाराप्रवाह तो नहीं थी परन्तु संसार का सामना करने का विश्वास बना। सबसे अहम बात यह रही कि वे मराठी को मूल भाषा के रूप में उपयोग करने की ताकत का फायदा लेते रहे। मराठी के लिए उनका आदर वास्तविक और गहरा है। और आज भी बना हुआ है। उन्होंने भाषाविदों द्वारा सुझाए वे तरीके साबित किए कि बच्चे भाषा

फोटो: सुरेश पाठशा

*इंग्लिश भाषा सीखने में कहानी या कविता की किताबें प्रभावी भूमिका निभाती हैं। ज़रूरत होती है कि किताबें बच्चों की पहुँच में हों।*

आसानी-से सीखते हैं, जब अर्थपूर्ण सन्दर्भ बन पाते हैं। घर या क्षेत्रिय भाषा में अर्थपूर्ण धाराप्रवाहिता से दूसरी भाषा को सीखने में मदद मिलती है। इस प्रक्रिया के साथ-साथ घर और क्षेत्रिय भाषा के लिए आदर बढ़ जाता है।

इस स्थिति की तुलना मध्य प्रदेश के एक शहर से करें। दो दशक पहले शहर में कुछ ही अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल हुआ करते थे, और वे सभी प्राइवेट थे। कक्षा में हिन्दी में बोलने पर प्रतिबन्ध था। शिक्षक स्वभाविक रूप से हिन्दी में विषय-वस्तु को समझा नहीं सकते थे। बच्चों को भी कक्षा में हिन्दी में बोलने की छूट नहीं थी क्योंकि प्रशासकों और शिक्षकों का मानना था कि यदि हिन्दी में बोलेंगे तो वे अँग्रेज़ी बोलना नहीं सीखेंगे। वे कहते कि बच्चों पर अँग्रेज़ी में बोलने का दबाव डालना पड़ेगा। सभी पाठ्यपुस्तकें अँग्रेज़ी में हुआ करती थीं। हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता था। कई स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा भी अँग्रेज़ी में होती थी। कक्षा के बाहर, खेल के मैदान में या अध्यापक-कक्ष में बच्चे व शिक्षक, सभी हिन्दी में बोला करते थे परन्तु कक्षा में समझाने के लिए या पाठ्यपुस्तक पढ़ते समय या उसपर चर्चा करते वक्त शिक्षक हिन्दी का कम ही उपयोग करते। कक्षा में वार्तालाप की भाषा हिन्दी नहीं थी।

अक्सर, शिक्षकों की अँग्रेज़ी बोलने की क्षमता काफी सीमित थी। वे संक्षिप्त व्याख्या देकर अपना काम चलाते थे। कई बार हिन्दी उपयोग करने के लिए शिक्षक और विद्यार्थियों को प्रधानाध्यापक की डाँट भी सहनी पड़ती। कक्षा में हिन्दी का उपयोग होता, पर वह सीमित रहता और उसे अनुचित माना जाता। एक सहकर्मी याद करते हैं, कि जब वे एक ऐसे स्कूल के प्रधानाध्यापक थे, उन्हें 11वी-12वीं के कुछ वरिष्ठ शिक्षकों द्वारा चुनौती दी गई थी। शिक्षक हिन्दी का उपयोग खुलकर करते। उनके खयाल से हिन्दी में समझाना ही एक ऐसा तरीका है जिससे विद्यार्थी अवधारणाएँ समझ पाते और बोर्ड परीक्षा में पास हो पाते।

स्कूल में इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को कई सालों तक दबाकर रखा जाता क्योंकि 'अँग्रेज़ी में ही बात करना है' की परिपाटी निभाना थी। इसके निहितार्थ गम्भीर हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों के लिए पाठ में उत्तरों को 'कोष्ठक करना' एक सरल रास्ता था। शिक्षक अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर पाते और बच्चे सही उत्तरों को याद कर लेते। ये बच्चे उच्च-मध्यम वर्ग के शहरी परिवारों के थे। उन्हें परिवार से या ट्यूशन का सहारा था। वे स्कूल के कार्यों से जूझकर खुद ही कुछ रास्ता निकाल लेते ताकि वे यथास्थिति से मुकाबला कर पाएँ। परन्तु, हिन्दी के लिए उनका सम्मान ज़रूर घट गया।

इस परिवेश में मध्य प्रदेश में अँग्रेज़ी एक आकांक्षापूर्ण भाषा के रूप में प्राइवेट स्कूलों में पढ़ रहे उच्च वर्ग के कुछ ही विद्यार्थियों तक सीमित रह गई है। हिन्दी में समझना और अर्थ लगाना, जोकि उनके लिए स्वाभाविक हो सकता था, उस पर प्रतिबन्ध-सा लग गया।

इसकी तुलना में महाराष्ट्र के स्कूलों ने एक सहज नज़रिया

अपनाया जो आकांक्षा के पहलुओं और अर्थपूण शिक्षण का मिश्रण था। इसके अतिरिक्त ये स्कूल शहरी और कस्बाई इलाकों के सरकारी-अनुदान प्राप्त स्कूल थे। उनकी पहुँच काफी विस्तृत थी। विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा जो उच्च शिक्षा से वंचित रह जाता, उनको मौका मिल पाया। उदाहरण के लिए एक सहकर्मी ने कहा कि उन्होंने बीस साल पहले सतारा ज़िले में अपने गाँव में ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। फिर माध्यमिक शिक्षण डोम्बिवली स्थित एक सेमी-इंग्लिश सरकारी स्कूल से प्राप्त किया। इस स्कूल की अच्छी प्रतिष्ठा थी और इसलिए वो आगे की पढ़ाई मोहाली के आयसर (IISER) में कर पाई। एक और सहकर्मी जो चन्द्रपुर ज़िले के नागभिड़ शहर की है, ने अपनी पढ़ाई सरकारी-अनुदान प्राप्त स्कूल में की और फिर आगे चलकर नागपुर में इंजिनियरिंग की।

एक अन्य सहकर्मी जो देश की एक प्रसिद्ध संस्था में पढ़ाते थे, ने लिखा, "मैं 11वीं-12वीं में ठाणे के ऐसे ही स्कूल में पढ़ा हूँ। वह एक अनुदान प्राप्त शाला थी जो एक चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा 1890 के दशक में स्थापित की गई थी। मेरी माँ, उनके भाई-बहन और मौसेरे भाई-बहन इसी स्कूल में पढ़े थे। 11वीं-12वीं में भी कक्षा की संस्कृति और भाषा मराठी थी। गणित और विज्ञान के विषयों को भी मराठी में ही समझाया जाता था, जिसके साथ अँग्रेज़ी शब्दावली उपयोग की जाती थी - शायद हाई स्कूल की सेमी-इंग्लिश को जारी रखते हुए। अधिकांश विद्यार्थी निम्न या निम्न-मध्यम वर्ग के थे। चूँकि यह 1996-1997 के दौरान की बात है, सभी या तो कम्प्यूटर इंजिनियरिंग या फिर इलेक्ट्रॉनिक इंजिनियरिंग करना चाहते थे।"

## मध्य प्रदेश में सेमी-इंग्लिश स्कूल क्यों नहीं?

*'साथ ही घर एवं पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा के संज्ञानात्मक विकास में योगदान की बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो पाना और इस बात को समझने में असफल होना कि संज्ञान के स्तर पर विकसित भाषा-क्षमता अन्य भाषाओं में आसानी-से अनूदित होती रहती है।'*

(राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र - 'भारतीय भाषा का शिक्षण', पृष्ठ v)

मध्य प्रदेश में अपनाई गई रणनीति द्विभाषी-दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करती है और हिन्दी को दूर रखती है। अँग्रेज़ी सीखने के बारे में यह विचार अब एक तरह का लोक ज्ञान बन गया है, हिन्दी पर प्रतिबन्ध लगाने की सोच दूर तक फैल गई है। इसका विकृत प्रभाव पड़ा है। यह सांस्कृतिक विचार काफी शक्तिशाली बनता जा रहा है और सभी स्कूलों के लक्ष्य को प्रभावित करता है।

फ़ोटो: राजेन्द्र देशमुख

*लाइब्रेरी का कालांश - जिसमें पाठ्यपुस्तकों के अलावा और भी काफी कुछ पढ़ने को मिलता है।*

उदाहरण के लिए, देवास शहर से 40 कि.मी. दूर, एक ग्रामीण प्राइवेट हिन्दी-माध्यम स्कूल, जिसने अपने आप को पिछले पन्द्रह सालों में स्थापित किया है, पर यह दबाव है कि वह अँग्रेज़ी माध्यम में परिवर्तित हो जाए। आसपास के परिवेश में अँग्रेज़ी कहीं भी मौजूद नहीं है, परन्तु उसे सीखने की आकांक्षा मज़बूत है। इस स्कूल पर अँग्रेज़ी माध्यम बनने का दबाव अमीर अभिभावकों और गाँव के बाहर बड़े अँग्रेज़ी-माध्यम स्कूल से आता है। इनमें से कुछ स्कूल यही परिपाटी अपनाते हैं, जिसकी हमने पहले चर्चा की है। स्कूल में हिन्दी बोलने पर प्रतिबन्ध है। इन विद्यार्थियों की घर की भाषा मालवी है पर क्षेत्रिय भाषा के रूप में सभी हिन्दी बोलते हैं। इस स्कूल के प्रधान अध्यापक अपने शैक्षणिक अनुभव को देखते हुए यह यकीन करते हैं कि अँग्रेज़ी एक विषय के रूप में पढ़ाना पर्याप्त है। परन्तु उन्हें चिन्ता है कि उनके कुछ विद्यार्थी जो अमीर घरों से हैं, तथाकथित बड़े प्राइवेट स्कूलों द्वारा लुभाए जा सकते हैं।

ये स्कूल बच्चों को गाँव से लेने-छोड़ने के लिए मिनी बस सुविधाएँ उपलब्ध करवाते हैं। गाँव की एक छात्रा जो इस बड़े प्राइवेट स्कूल में पढ़ती है, अपनी विज्ञान की

पाठ्यपुस्तक समझ नहीं पा रही थी क्योंकि वह उसका सन्दर्भ नहीं पकड़ रही थी। उसी गाँव के एक अन्य छात्र को प्राइवेट इंग्लिश स्कूल से निकालकर, आठवीं के बाद गाँव के हिन्दी-माध्यम स्कूल में डाल दिया गया। उसके माता-पिता को लगा कि वह स्कूल की पढ़ाई से जूझ नहीं पा रहा था। यहाँ, दोष बच्चे को दिया गया, स्कूल की अँग्रेज़ी पढ़ाने की पद्धति को नहीं।

इन स्कूलों का केन्द्रिय विचार है कि हिन्दी कक्षा-शिक्षण की भाषा नहीं होनी चाहिए और अँग्रेज़ी बोलने पर ज़ोर देना होगा। ये मानते हैं कि प्राथमिक कक्षा से ही अँग्रेज़ी को लागू करना चाहिए। एक अन्य गाँव में, वहाँ के कुछ नेताओं ने प्राथमिक शाला के प्रधान अध्यापक से चर्चा कर एक अनौपचारिक व्यवस्था बनाई। देवास शहर से दो शिक्षिकाओं को नियुक्त किया ताकि वे अँग्रेज़ी और गणित पढ़ाएँ और शिक्षण में अँग्रेज़ी पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करें। इन अतिरिक्त शिक्षिकाओं को समुदाय द्वारा आर्थिक सहयोग दिया गया। प्रधान अध्यापक इस बात से राज़ी हो गए क्योंकि इस तरह से बच्चों को सरकारी स्कूल में रहने के लिए प्रेरित कर सकते थे। परन्तु चार महीने बाद इस सरकारी स्कूल के शिक्षक नाखुश थे। नई शिक्षिकाएँ ईमानदारी से पढ़ाती थीं परन्तु बच्चे इस प्रयोग से काफी विचलित हो गए। एक शिक्षिका ने कहा, "बच्चों की संख्याओं की समझ काफी कमज़ोर रही। मुझे अपने ही तरीके अपनाने चाहिए थे। हम काफी अच्छा करते हैं।" भाग्यवश यह प्रयोग जल्द ही समाप्त हो गया, भले ही उसके कारण कुछ और ही थे।

अँग्रेज़ी-माध्यम स्कूल कैसा होना चाहिए? यह आम-विचार बन रहा है कि ऐसा जहाँ हिन्दी को अलग रखना चाहिए। शहर के कई प्रतिष्ठित स्कूल इन मानदण्डों का पालन करते हैं। जो नहीं कर पाते उन्हें हीन भावना से देखा जाता है। शिक्षकों के स्वाभाविक विचारों को अलग रखा जाता है। उच्च वर्ग के ग्रामीण बच्चों को ऐसे स्कूलों में भेजा जाता है जहाँ पाठ्यपुस्तकें अँग्रेज़ी में होती हैं, हिन्दी पर प्रतिबन्ध होता है और कक्षा तीसरी से ही अँग्रेज़ी लागू कर दी जाती है। कक्षा के बाहर हम सभी बहुभाषी हैं - चाहे वह काम की जगह हो, बाज़ार हो, खेल का मैदान हो या शिक्षकों का स्टाफ रूम! परन्तु, जब स्कूल और भाषा शिक्षण की पद्धति की बात आती है, हम अस्वाभाविक रणनीतियों को अपनाते हैं। विशेषज्ञों की सलाह को अनदेखा कर देते हैं।

## आश्रम शालाओं के लिए सेमी-मराठी स्कूल क्यों नहीं?

विरोधाभास तो यह है कि जहाँ महाराष्ट्र में अँग्रेज़ी सीखने की महत्वाकांक्षा के लिए एक मध्य-मार्ग अपनाया गया है वहीं आदिवासी

भाषाओं के प्रति नकारात्मक नीति अपनाई गई है। वही तर्क देते हुए, प्रबल भाषा यानी कि मराठी, को लादा गया है। वही सोच रही कि यदि बच्चों पर मराठी भाषा का दबाव न रखा जाए तो बच्चे मराठी नहीं सीखेंगे जो कि आगे के शिक्षण और नौकरी के लिए आवश्यक है। राज्य के आदिवासी इलाकों की आवासीय आश्रम-शालाओं और ज़िला परिषद स्कूलों में कई क्षेत्रिय भाषाएँ हो सकती हैं जैसे कि कोरकु, गोंडी, माड़िया, भिली व अन्य। इन विद्यालयों में शिक्षकों का एक बड़ा वर्ग बाहरी है, जिन्हें मुख्यधारा के मराठी भाषा क्षेत्र कहा जा सकता है। इन स्कूलों में भाषा नीति आदिवासी भाषाओं को लगभग प्रतिबन्धित कर देती है। एक शिक्षक ने टिप्पणी की, "अन्यथा, वे मराठी कैसे सीखेंगे।" यह वही तर्क है और उसका प्रभाव भी एक समान है। बच्चों की कक्षा का परिवेश उनके घर या क्षेत्र की भाषा को नकार देता है। आश्रम-शालाओं में हम पाते हैं कि कक्षा 1 और 2 के कुछ शिक्षक बच्चों की घर की भाषा का उपयोग करते हैं परन्तु वरिष्ठ शिक्षक नहीं करते। कुछ शिक्षकों ने ये आदिवासी भाषाएँ सीख ली हैं परन्तु वे उन्हें कक्षा के बाहर, खेल मैदान या हॉस्टल में अनौपचारिक बातचीत के लिए इस्तेमाल करते हैं। कक्षा की संस्कृति

*'सामान्यत: आदिवासी इलाकों के स्कूलों के शिक्षक विद्यार्थियों या उनके अभिभावकों की भाषा से अनजान होते हैं। इतना ही नहीं, उड़ीसा में तो विद्यार्थियों पर प्रतिबन्ध है कि वे अपने घर की भाषा का स्कूली समय, सुबह 10.00 से शाम 4.30 तक के लिए प्रयोग न करें। कुछ ऐसी ही स्थिति उत्तर-पूर्व और दिल्ली में भी है! कई अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आदिवासी स्कूलों में विद्यार्थी 5वीं में भी पाठ्यपुस्तक के किसी भी वाक्य को पढ़ने में असमर्थ हैं। अक्षर पहचान में और शब्द निर्माण में उन्हें कठिनाई होती है। शिक्षकों के लिए विद्यार्थियों की भाषा जानना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। ऐसे में विशेष तरीके विकसित करने की ज़रूरत है, जो घर, पड़ोस व स्कूल की भाषा के बीच पुल का काम कर सकें। अधिकांशत: कक्षा में शिक्षक और विद्यार्थी में संवाद इकतरफा (वन वे) होता है जिसमें शिक्षक बोलता है, और विद्यार्थी सुनते हैं, विद्यार्थी समझ रहे हैं या नहीं, इससे कोई मतलब नहीं होता। बहुभाषिता और संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने के लिए जिसकी वकालत हम इस आधार पत्र के माध्यम से कर रह हैं, इसमें यह अनिवार्य करना होगा कि शिक्षक विद्यार्थियों की भाषा से अवगत हों।'*

(राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र – 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण', पृष्ठ 27-28)

फोटो: शिखा गुप्ता

में कभी नहीं। इस सिद्धान्त का अनुसरण इस हद तक हो गया है कि आदिवासी पृष्ठभूमि के शिक्षक जिनकी संख्या बहुत कम है, वे भी 'केवल मराठी में बातचीत' की प्रथा का पालन करते हैं।

आम तौर पर कक्षा में बच्चे चुप रहते हैं। वे बात नहीं करते। इसके पश्चात बच्चों पर वही सामान्य नीरस प्रथा लादी जाती है – वे बिना कुछ समझे पाठ्यपुस्तकों और गाइडों की नकल करते हैं।

राज्य के तीन अलग क्षेत्रों में किए गए एक आन्तरिक सर्वेक्षण में 371 आश्रम शालाओं से 66 आश्रम शालाओं का रैन्डम सैम्पल लिया गया। इस सर्वेक्षण में पाया गया कि कक्षा 6, 7, 8 के 15 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी मराठी में लिखी विज्ञान पाठ्यपुस्तक पढ़ नहीं पाते थे और 37 प्रतिशत बच्चे काफी मुश्किल से पढ़ पाते थे और केवल कुछ भाग ही। 'केवल मराठी में बातचीत' की नीति के चलन से लगभग आधे बच्चे अर्थपूर्ण पढ़ाई से वंचित रह जाते थे।

हाल ही में सरकार ने आदिवासी भाषाओं में कक्षा 1 और 2 के लिए प्रवेशिकाएँ उपलब्ध करवाई हैं परन्तु वे क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती हैं। हालाँकि, आदिवासी पृष्ठभूमि के कुछ शिक्षकों ने मराठी में निपुणता हासिल कर ली है परन्तु मुख्यधारा क्षेत्रों से बहुत कम शिक्षकों ने आदिवासी भाषाएँ अर्जित की हैं। भाषा की राजनीति भी स्पष्ट रूप से उभरती है।

*'स्कूली शिक्षा के माध्यमिक या उच्चतर स्तर पर शिक्षा का माध्यम, धीरे-धीरे क्षेत्रिय भाषा या राज्य स्तरीय भाषा या हिन्दी या अँग्रेज़ी हो सकता है।'*

(राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण', पृष्ठ 16)

*'बहुत समय तक यह विश्वास किया जाता रहा कि द्विभाषिता का संज्ञानात्मक वृद्धि और शैक्षिक सम्प्राप्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है... दूसरी तरफ, हाल में हुए कुछ अध्ययनों ने दावा किया है कि द्विभाषिता, संज्ञानात्मक लचीलेपन व विद्वत् उपलब्धि में सकारात्मक रिश्ता है... इसलिए स्कूली पाठ्यचर्या में द्विभाषिता को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। हमें यह मालूम होना चाहिए कि विविध भाषिक कुशलताएँ अवचेतन स्तर पर आसानी-से एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित हो जाती हैं और इसके लिए किसी भी प्रकार के अतिरिक्त प्रयास की ज़रूरत नहीं होती।'*

(राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र - 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण' पृष्ठ 21-22)

*'यह संचरणीयता ही उन आधारों में से एक रही है जिसके कारण अँग्रेज़ी को अपेक्षाकृत देर से लागू करने की सिफारिश की जाती है। शिक्षा में भाषिक निपुणता जो बच्चे की अपनी भाषा में विकसित होती है, बाद में एक नई भाषा में स्वाभाविक रूप से चली जाएगी।*

(राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र - 'अँग्रेज़ी भाषा का शिक्षण' पृष्ठ 5)

सेमी-मराठी नीति तब कारगर हो सकती है जब पाठ्यपुस्तकें मराठी में हों परन्तु कक्षा में सभी व्याख्याएँ और बातचीत क्षेत्र की आदिवासी भाषा में हो। शिक्षकों को द्विभाषी होने के लिए प्रयास करना पड़ेगा। कक्षा का माहौल बच्चों की भाषा का होना चाहिए। हमें मौखिक संस्कृति का भरपूर उपयोग करना होगा। मराठी की तरफ बढ़ने की योजना लचीली और स्वाभाविक हो सकती है। शिक्षक यह कर सकते हैं और इसके कुछ उदाहरण भी मिलते हैं। आदिवासी भाषाओं को आदर देने से कक्षा की संस्कृति और बच्चों का मनोबल बदल जाएगा।

राज्य के अलग-अलग क्षेत्रों में काफी भिन्नता है। ऐसे कोई मानदण्ड से शुरुआत की जा सकती है कि भर्ती किए गए नए शिक्षकों को एक आदिवासी भाषा आना अनिवार्य है। जो शिक्षक फिलहाल पढ़ा रहे हैं, उनके लिए संक्षिप्त प्रशिक्षण आयोजित किए जा सकते हैं ताकि वे स्कूल के अनुसार उपयुक्त आदिवासी भाषा में कुछ हद तक निपुण हो सकें। इसके अतिरिक्त हर स्कूल के पास स्थानीय स्रोत होते हैं जिनका सृजनात्मकता से उपयोग किया जा सकता है। क्षेत्रों की विविधता को देखते हुए केवल एक मोटी रूपरेखा हो सकती है और इस बात पर ज़ोर दिया जा सकता है कि हर स्कूल अपने सन्दर्भ अनुसार सेमी-मराठी योजना बना ले। ऐसा करना सम्भव है जैसे कि कुछ पहली और दूसरी के शिक्षकों ने कर के बताया है। इस प्रकार के सार्थक

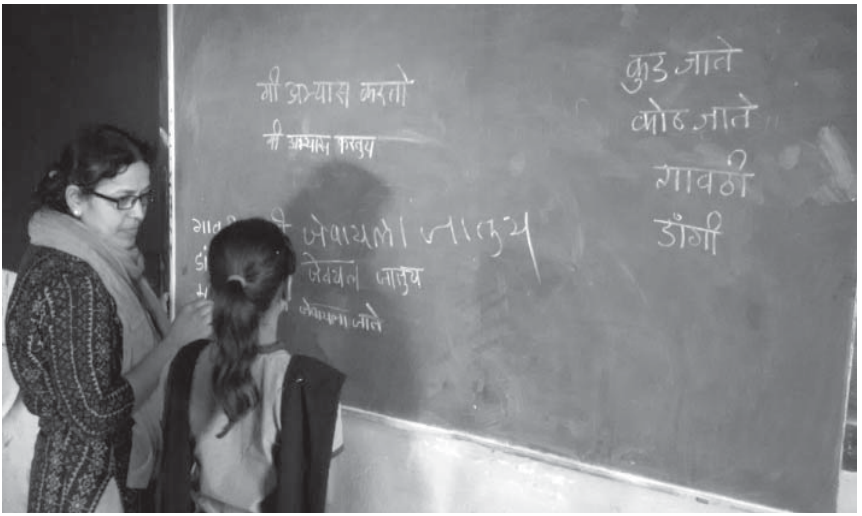


*आश्रमशालाओं के साथ चल रहे प्रोजेक्ट के दौरान हमारे साथी कई दफा बोर्ड पर मराठी में वाक्य लिखकर बच्चों से उन्हें उनकी बोली में लिखने के लिए कहते थे। फिर इन वाक्यों को इंग्लिश में बोलने की कोशिश होती थी।*

प्रयोग कई जगह हुए हैं और किए भी जा रहे हैं। (देखें आदिवासी अकादमी; जी.एन. देवी; साधना सक्सेना)

आदिवासी भाषाओं में बनी प्रवेशिकाओं का क्रियान्वयन विस्तार से किया जाना चाहिए और मराठी की तरफ बढ़ने की कार्य-योजना होनी चाहिए। हर स्तर पर कक्षा में क्षेत्रीय आदिवासी भाषा में बोलने और समझने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

यह सिफारिश एन.सी.ई.आर.टी. फोकस समूह के आधार पत्र 2006 में दी गई है परन्तु उसे अनदेखा किया गया है।

एक बात जो याद रखना ज़रूरी है कि महाराष्ट्र के सेमी-इंग्लिश विद्यालयों में, घर की भाषा के लिए गर्व और आदर होने से विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से अँग्रेज़ी भाषा का उपयोग कर पाए। जैसे कि भाषाविदों का दावा है कि एक भाषा में पकड़ और प्रवाह होने से दूसरी भाषा सीखने में मदद मिलती है। वही पकड़ दूसरी भाषा में भी बनने लगती है। आदिवासी इलाकों के लिए सेमी-मराठी पद्धति अपनाना कारगर हो सकता है। शायद आदिवासी संस्कृतियों को हीन भावना से देखने में बदलाव आ सकता है।

## सार्वजनिक बहस का मुद्दा

मेरी सहकर्मी सतारा में अपने गाँव के विकास का ब्यौरा देती हैं। गाँव का

माध्यमिक और हाई स्कूल अब एक सेमी-इंग्लिश स्कूल में परिवर्तित हो रहा है। प्राथमिक विद्यालय अभी भी मराठी माध्यम है। स्कूल की कक्षाओं में मराठी का भरपूर उपयोग होता है। महाराष्ट्र के कुछ इलाकों में सेमी-इंग्लिश माध्यम या द्विभाषी माध्यम की शुरुआत सरकारी-अनुदान प्राप्त स्कूल के साथ हुई थी। इनकी लोकप्रियता के कारण सन् 2005 में महाराष्ट्र सरकार ने कुछ चयनित सरकारी स्कूलों में पाँचवीं कक्षा से सेमी-इंग्लिश माध्यम की शुरुआत की है। इस पहल को 2010 में विस्तारित किया गया ताकि बच्चे सरकारी स्कूल न छोड़ें।

कुछ स्कूलों को पहली कक्षा से ही अँग्रेज़ी-माध्यम बनने की अनुमति दी गई। यह त्रुटिपूर्ण है। यह नीति सेमी-इंग्लिश माध्यम स्कूलों की संज्ञानात्मक मज़बूती के खिलाफ है जो स्वाभाविक रूप से और मराठी के बलबूते पर सवार होकर अँग्रेज़ी की शुरुआत करते हैं।

दूसरों के साथ कदम मिलाने के लिए अन्य राज्य सरकारें भी 'पूर्ण अँग्रेज़ी-माध्यम' स्कूलों का दबाव डाल रही हैं। बाज़ार की ताकतें भी इसी दिशा में आगे बढ़ती हैं। यह बड़े व्यापार का क्षेत्र है।

यह, भाषा के प्रति हमें ओझल करने वाली नीति है। प्रारम्भिक अवस्था से ही पूर्ण अँग्रेज़ी से शुरू करना अनुचित है क्योंकि पहले क्षेत्रिय भाषा में बच्चों के आधारभूत कौशल विकसित होने चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में स्कूल का माध्यम क्षेत्रिय भाषा रखते हुए, अँग्रेज़ी को मौखिक रूप से शुरू किया जा सकता है। जैसे कि भाषाविद सुझाते हैं, उसके साथ परिचय करवाना चाहिए। भाषाओं का विकास एक-दूसरे की संगति में होता है। साथ-साथ परिवेश में अँग्रेज़ी पठन सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना और आज के समय मौजूद मल्टीमीडिया का उपयोग करना फायदेमन्द होगा। अँग्रेज़ी के कृत्रिम द्वीप बनाने की बजाए क्षेत्रीय भाषा को आधार बनाते हुए अँग्रेज़ी सिखाना बेहतर होगा।

ऐसा क्यों है कि दो बिलकुल विपरीत विचार भाषा शिक्षण को प्रभावित कर रहे हैं? ऐसा क्यों है कि अँग्रेज़ी सीखने के लिए अलग-अलग रास्ते सुझाए जाते हैं?

हठधर्मी हुए बिना यह समझना कि 'अँग्रेज़ी के कृत्रिम द्वीप बनाना' एक पुरानी बहस का हिस्सा है और कुलीन स्कूलों के उदाहरण से उभरा है। यह विचारधारा इस सोच पर टिकी है कि एकभाषीयता या मोनोलिंग्युल तरीका सबसे श्रेष्ठ है। इस विचार के अनुसार अन्य भाषाएँ बाधा डालती हैं इसलिए या तो उन पर 'प्रतिबन्ध' लगना चाहिए या उन्हें एक महत्वहीन विषय के रूप में रखना चाहिए। वे जान-बूझकर अँग्रेज़ी के लिए कृत्रिम द्वीप बनाते हैं।

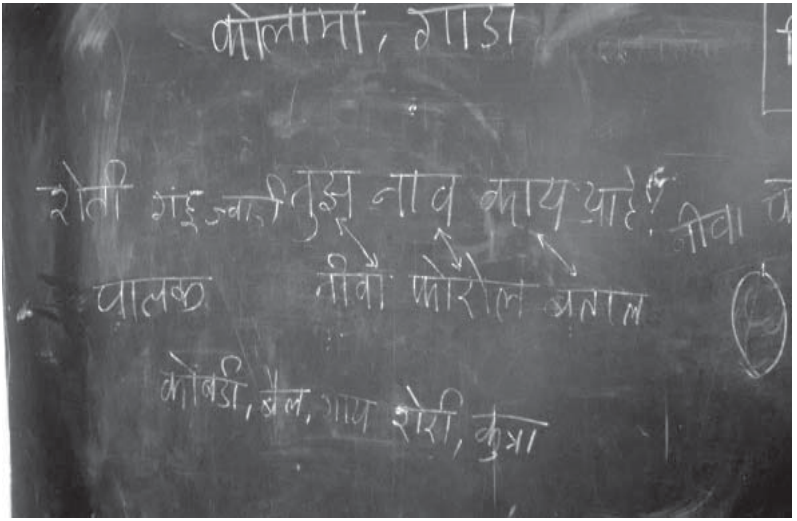


*आश्रमशालाओं में कई शिक्षक भी सामान्य मराठी शब्दों के समकक्ष कोलामी शब्द बच्चों से पूछकर लिखते और बाद में इन शब्दों के लिए इंग्लिश शब्द बताते।*

दूसरा विचार बहुभाषी मार्ग सुझाता है जो बच्चों की मातृ या क्षेत्रीय भाषा पर आधारित है। सभी भाषाओं के लिए एक समृद्ध परिवेश बनाएँ। इसके अलावा क्षेत्रीय भाषा को ध्यान में रखते हुए उसमें निपुणता हासिल करें ताकि उस पर सवार होकर इंग्लिश सीखी जा सके। ऐसी योजना बनाएँ जिससे बच्चे के सामाजिक सन्दर्भ के अनुसार वह अँग्रेज़ी सीखने की ओर कड़ी-दर-कड़ी बढ़ सके। (देखिए जेसिका बॉल की रपट)

एन.सी.ई.आर.टी. के राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र इस विवाद को परिपेक्ष्य में रखते हैं।

दरअसल, सामाजिक सन्दर्भ एकभाषी अँग्रेज़ी स्कूलों को काफी प्रभावित करता है। महाराष्ट्र के कुछ विद्यार्थी जो सेमी-इंग्लिश विद्यालयों में पढ़े हैं, महसूस करते हैं कि उनके मित्र जो पूर्ण-अँग्रेज़ी-माध्यम स्कूलों में पढ़े हैं, कई बार उनसे बेहतर प्रदर्शन कर पाते हैं। परन्तु, जब उनसे हमने और गहराई से छान-बीन की तो उन्हें एहसास हुआ कि बेहतर करने की सम्भावना इसलिए अधिक है क्योंकि उन साथियों को घर पर सांस्कृतिक और आर्थिक सहयोग मिला है। कई विद्यार्थियों को घर पर ही अँग्रेज़ी से परिचय हो जाता है। कुछ को बहु-सांस्कृतिक परिस्थिति में अध्ययन करने के मौके मिलते हैं जहाँ वे अँग्रेजी में आसानी-से कुशलता हासिल कर पाते हैं। अक्सर अँग्रेज़ी

सीखने की राह में बहुत-से सामाजिक कारक कहीं-न-कहीं छिपे रहते हैं।

बहुभाषी शिक्षा को समर्थन देना समाज के लिए बेहतर है। यह किसी प्रकार से भी विद्यार्थी की आकांक्षाओं को बाधित नहीं करता और वे अँग्रेज़ी में उच्च शिक्षा हासिल कर पाते हैं।

यह समय है कि एन.सी.ई.आर.टी. के आधार पत्रों, जिनका पहले उल्लेख किया गया है, से आगे बढ़कर राज्य सरकार अपनी-अपनी समीतियों का गठन करें। इस समिति में भाषाविद, साहित्यकार, इतिहासकार आदि शामिल रहें - वे अध्ययन करें और सभी पक्षों की दलीलें सुनें। अपने सुझावों के साथ-साथ वे राज्य के लिए स्कूल में अँग्रेज़ी शिक्षण की कार्य-योजना का प्रस्ताव रखें। इसे राज्य में सार्वजनिक बहस का मुद्दा बनाएँ। कई बार यह तर्क देते हुए सुझाव खारिज किए जाते हैं कि वे व्यवहारिक नहीं हैं। इस स्थिति को समझकर बीच के रास्ते ढूँढ़ने होंगे जो कि राज्य सरकारों की ज़िम्मेदारी बनती है।

---

**अरविन्द सरदाना:** सामाजिक विज्ञान समूह, *एकलव्य* से सम्बद्ध हैं। एन.सी.ई.आर.टी. एवं अन्य राज्यों की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण प्रक्रियाओं से जुड़ाव रहा है।

**अँग्रज़ी से अनुवाद: अनु गुप्ता:** *एकलव्य* के किशोरावस्था शिक्षण कार्यक्रम से सम्बद्ध।

***आभार:*** *भागेश्री मेंषाकर, सयाली चोघले, भास बापट, अनीश मोकाशी और संदीप नाइक को अपने अनुभव और विचार साझा करने और कई लम्बे वार्तालापों के लिए एवं अनु को कुशल अनुवाद के लिए धन्यवाद।*

**सन्दर्भ:**

1. राष्ट्रीय फोकस समूह, 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2006.
2. राष्ट्रीय फोकस समूह, 'अँग्रेज़ी भाषा का शिक्षण', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2006.
3. Sadhna Saxena, 'Should children learn to Read and Write in their mother tongue', Language and Language Teaching, Issue 13, Vidya Bhavan Society, Udaipur, 2018
4. G N Devy, 'The Crisis Within', Aleph Book Company, New Delhi, 2017.
5. http://gndevy.in/inst.html
6. Jessica Ball, 'Enhancing Learning of Children from diverse language backgrounds: Mother Tongue based bilingual or multilingual education in the early years'. Analytical Review commissioned by UNESCO, Paris, 2011.

# फरिश्तों के चेहरों पर रंग

## मार्क ओ'सुलीवान

"तुम्हारे डैडी अब फरिश्तों के साथ हैं, सिएन," अन्तिम संस्कार के बाद माँ मुझसे लगातार कहती रहती थी। "जन्नत के एक फरिश्ते।"

मैं दस साल का था - इतना बड़ा कि मेरे लिए फरिश्तों में विश्वास करना मुश्किल था। फरिश्ते छह फुट लम्बे नहीं होते थे। उनके सिर पर लम्बे झबरीले बाल नहीं होते थे, इतने लाल कि लगभग नारंगी रंग के दिखते। फरिश्तों की रेत के रंग की मूछें या भूरी आँखें नहीं होती थीं, न ही वे इतने ज़ोर-से हँसते थे कि लगता जैसे वे गा रहे हों।

"एक दिन आएगा जब हम सब जन्नत में मिलेंगे," उसने कहा था। दिये की रोशनी में उसके बाल उलझे और महीन रेशों जैसे लग रहे थे। उसके गालों पर आँसू बह रहे थे। उसे देखकर लगता था जैसे वह कहीं तेज़ बारिश में फँसी रही हो।

"नहीं, हम नहीं मिलेंगे। मैं अब उन्हें फिर कभी नहीं देख पाऊँगा," मैंने ज़ोर देकर कहा। "मैं तो अब उन्हें अपनी कल्पना में भी नहीं देख पाता। मैं उनके चेहरे को याद ही नहीं कर पाता।"

और यह बात सही थी। कुछ महीनों पहले जब हम डॅन लाओगेरी में रहने आए थे तो हमारे परिवार के सारे-के-सारे फोटोग्राफ न जाने कहाँ बिला गए थे। उनके बिना उनका चेहरा मेरे सामने आता ही नहीं था। मैं उनकी कल्पना करने के लिए अपनी आँखें कसकर बन्द कर लेता। मुझे सिर्फ खाली धुँधलका ही दिखाई देता, उस गहरी धुन्ध की तरह जो हमारे समुद्री कस्बे पर छा जाया करती थी।

एक लम्बी, धीमी खामोशी में कई हफ्ते गुज़र गए। हर रोज़, हमारे उस छोटे-से मकान में दिन भर दीया जलता रहता था। बाहर धुन्ध दुकानों और मकानों के सामने के हिस्सों के, सड़क से गुज़रते ताँगों के घोड़ों के, यहाँ तक कि लोगों के चेहरों तक के रंगों को चाटती रहती। सिर्फ काली परछाइयाँ और स्याह छायाएँ भर बची रह जातीं।

हर रोज़, मैं दिन भर अपने सोने के कमरे की खिड़की पर बैठा याद करने की कोशिश करता रहता कि डैडी कैसे दिखते थे। एक बार मैंने नीचे सड़क से गुज़रते एक आदमी को देखा। वह डैडी जितना ही लम्बा था और उन्हीं की तरह उसके चौड़े कन्धे थे, लेकिन मैं उसका चेहरा नहीं देख सका क्योंकि वह धुँधलके में खो गया था। डैडी के बारे में भी मुझे ऐसा ही लगता था। वे दूर चले जा रहे थे और मुड़ नहीं रहे थे कि मैं उनका चेहरा देख सकता।

मैं आँखों को अक्सर कसकर बन्द करता रहता था, और उनसे लगातार आँसू बहते रहते थे, जिनकी वजह से मेरी आँखें कमज़ोर हो गई थीं। जब भी मैं उन्हें खोलता, मुझे अपने कमरे के रंग पहले से और भी फीके दिखाई देते। आखिर एक सुबह जब मैं जागा तो मैंने पाया कि मैं कोई भी रंग नहीं देख पा रहा था।

मेरे बिस्तर के बगल की मेज़, और मेरी कीमती चीज़ों से भरा लाल डिब्बा गन्दे काले रंग का हो गया था। परदों के पीले और नीले रंग उड़ चुके थे। मेरी दीवार पर लगी तस्वीर का इन्द्रधनुष अब धूसर रंगों का धनुष बनकर रह गया था, जिसकी पट्टियों का धूसरपन क्रमश: गहरा होता गया था।

मेरी उदासी खौफ में बदल गई। मैं माँ को पुकारने दरवाज़े की ओर भागने को हुआ। लेकिन फिर मैंने खुद को रोक लिया। मैं माँ को इन अजीबो-गरीब बदलावों के बारे में कैसे बताता? वह पहले ही इतनी उदास और परेशान थी। कभी-कभी मेरे मन में यह खयाल आता जैसे वह किसी बच्ची में बदल गई हो, जो बोलने की

बजाय रोती और आहें भरती रहती थी। नहीं, मुझे ये बातें अपने तक ही रखनी होंगी।

उस खौफनाक, बेरंग सुबह, मैं जिन नंगी सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, वे महज़ अँधेरी नहीं थीं। वे मुझे काजल से पुती दिखाई दे रही थीं। मैंने रसोई का दरवाज़ा खोला, तो मुझे हर चीज़ पर वही कालिख जमी हुई दिखाई दी। यहाँ तक कि माँ का चेहरा भी। उसकी चमड़ी जीर्ण और गन्दी दिख रही थी। मैं उसे छूने की कल्पना भी नहीं करना चाहता था। मेज़ पर रखी दूध की बोतल राख से भरी लग रही थी।

"मैं उनका चेहरा नहीं देख पा रही हूँ," वह चिल्लाई। "मैं याद नहीं कर पा रही हूँ कि वे कैसे दिखते थे।"

माँ भी नहीं, मैंने सोचा। मुझे वहाँ से हट जाना पड़ा। मेरे लड़खड़ाते पैर मुझे गलियारे के दरवाज़े की ओर ले गए। मेरे पीछे माँ की सिसकियों से शोकगीत फूट रहा था। मैं बाहर धुन्ध में डूबी सड़क पर भाग आया।

***

उस भयावह साल के जून में हम डॅन लाओगेरी नामक उस सुन्दर समुद्री कस्बे में रहने आ गए थे। डैडी को वहाँ रंग बेचने वाली एक दुकान में नई नौकरी मिल गई थी। उन्हें यह काम बहुत पसन्द आता था - तरह-तरह के रंगों को आपस में मिलाना और बेचना। मकानों के अन्दर और बाहर पोते जाने वाले पेण्ट; कलाकारों के ऑयल कलर और वॉटरकलर। और मुझे वह कस्बा बहुत अच्छा लगता था। पूरी गर्मियों-भर समुद्र पर बना वह पुल छुट्टियाँ मनाने वालों और सैलानियों से भरा रहता था। धूप समुद्र की लहरों को दूर-दूर तक सुनहरा कर देती और मैं बर्फ के मीठे, गुलाबी रेशों जैसे गुड़िया के बालों को अपनी जीभ पर चुभलाता रहता। समुद्र के सामने के पूरे हिस्से में ऐसी आलीशान इमारतें खड़ी हुई थीं जैसी मैंने पहले कभी नहीं देखी थीं। उनके ढलवाँ बगीचे फूलों से लहलहाते रहते थे।

अगस्त में एक दिन जब हम उस समुद्री पुल पर 'पंच एण्ड जूडी' का शो देखने उन मकानों के बगल से होकर गुज़र रहे थे, तो मैंने डैडी से पूछा, "आपका पसन्दीदा रंग कौन-सा है?"

"तुम्हारा कौन-सा है?" उन्होंने अपनी रेतीली मूँछों पर हमेशा की तरह मज़ेदार ढंग से हाथ फिराते हुए पूछा।

"लाल!" मैंने तपाक-से जवाब दिया; उस वक्त मेरा मुँह जीभ पर घुलते मीठे गुड़िया के बालों से भरा हुआ था।

उन्होंने माँ की ओर मुड़कर मज़ाकिया अन्दाज़ में अपनी बाँह उनकी कमर में डाल दी।

"और गोरी मैम की पसन्द क्या होगी?"

"मुझे इस तरह बीच सड़क पर मत जकड़ो," माँ ने दबी ज़ुबान हँसते हुए कहा और फिर हमारे ऊपर की ओर के बगीचों में फैले रंगों को देखा। "मेरा खयाल है, पीला। हाँ, वे जो ट्यूलिप हैं, उनके जैसा पीला।"

"इस तरह मामला तय हो गया," डैडी ने कहा। "मेरा पसन्दीदा रंग है, नारंगी।"

"क्या, डैडी?"

"क्योंकि लाल तुम्हारा है और पीला तुम्हारी माँ का है। दोनों को मिला दो तो क्या बनेगा? सिर्फ नारंगी।"

"आपके बालों की तरह," मैंने मज़ाक किया क्योंकि वे उन्हें सुनहरा कहते थे।

"तू तो शरारत करता रह, शैतान," उन्होंने हँसते हुए कहा, और फिर अपनी बड़ी, कोमल हथेली से मेरे बाल झकझोर दिए।

लेकिन यह गर्मियों की बात थी। कड़ाके की सर्दियों के उस मौसम के पहले की बात जब डैडी की मृत्यु हुई थी, उससे पहले की बात जब उनका चेहरा मुझसे छिपा दिया गया था, उसके पहले की बात जब मेरे भीतर रंग मर गए थे।

***

उस दुखदाई सुबह, मैं धुन्ध के बीच चलता हुआ अपनी उस सड़क से बाहर निकल आया। मुख्य सड़क खिड़कियों और दरवाज़ों का एक कुहासा था जो अपने भीतर अँधेरे रहस्य छिपाए हुए था। धुन्ध के भीतर से, स्याह और अवास्तविक लगते लोग सहसा नमूदार होते, तो दिल की धड़कन थम जाती थी। मैं सड़क पर पटरी पार करने लगा, तो ट्राम की घण्टियाँ भुतहे ढंग से बज उठीं। कुहरे से पुती उसकी खिड़कियों के पीछे बैठे यात्री बिना चेहरों के प्रेतों जैसे लग रहे थे। डैडी की तरह।

समुद्र पर बने पुल पर पहुँचने के बाद आखिरकार मैं एकान्त पा सका।

धुन्ध में छिपा हुआ। मुझे न तो अपने पीछे का समुद्र दिख रहा था, न अपने सामने के आलीशान मकान दिख रहे थे। मैं ठण्डी ज़मीन पर बैठ गया। बीच-बीच में खुद को गरमाने के लिए मैं दीवार की बगल में चलने लगता। एक बार तो मैं दौड़ तक पड़ा और उस दौरान जब मैं पूरी रफ्तार पर था, तो मुझे लगा जैसे मैंने डैडी को हँसते हुए सुना हो। मैं ठहर गया, तो वह हँसी गायब हो गई। मैं फिर से दौड़ पड़ा, लेकिन वह वापस नहीं लौटी। लगा कि अब डैडी के चेहरे को याद करने की कोशिश बेकार है। इसकी बजाय, मैंने खुद को पानी के एक गहरे डबरे में हिलते-डुलते पाया। मैंने उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा और गुस्से से पानी को बिलोकर उसे मिटा दिया।

तभी पुल के दूसरे सिरे पर एक हल्की-सी थाप सुनाई दी। धुन्ध के भीतर एक औरत की आवाज़ गूँज उठी।

"हाँ, तब भी उसे ज़ोर-से फेंक दो!"

मैं मन-ही-मन मुस्कराया। मैं अन्त्येष्टि के बाद से हँसा नहीं था और इसलिए यह अजीब-सा लगा। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि धुन्ध के भीतर से एक सन्तरा धीरे-धीरे लुढ़कता आ रहा था। वह डबरे में जा गिरा। मैं उसे वहाँ तैरता हुआ देखता रहा। मैं चकित था कि मुझे उसका रंग दिख रहा था। मुझे लगा कि मेरे स्याह-सफेद दुस्स्वप्न समाप्त हो चुके हैं।

मैं उत्तेजना से भरा हुआ उस दिशा में चल पड़ा जहाँ से वह सन्तरा आया था। घने कोहरे के बीच मुझे काली पोषाक पहने एक बूढ़ी औरत दिखी। शुरू में मुझे उसका चेहरा दिखाई नहीं दिया। वह बहुत ठिगनी और खुद पर बहुत झल्लाई हुई थी। उसका डोरीवाला थैला खुल गया था। उसने बेलोच ढंग से झुकते हुए गीले फुटपाथ से सरडाइन मछलियों से भरा एक डिब्बा और चाय का एक पैकेट उठाया।

"मैं आपकी मदद करता हूँ, मैम," मैंने कहा। वह मुझे देखने के लिए मुड़ी। जब मैंने धूसरपन से बदशक्ल हुए एक और चेहरे को देखा, तो मेरा दिल बैठ गया। मैंने उस फल को देखा जिसे मैंने अपने हाथ में ले रखा था। वह एक धूसर, फुंसियों के निशानों से भरी चीज़ थी।

"तुम भले आदमी हो," उसने कहा। काले दस्तानों से ढँके उसके हाथ काँप रहे थे। या हो सकता है वे दस्ताने नीले या शायद लाल भी रहे हों। मैं कैसे समझ सकता था?

"मैं आपका थैला उठाकर ले चलूँगा," मैंने पेशकश की। "कहाँ रहती हैं, आप?"

"यहीं सड़क के करीब," उसने कहा। "उम्मीद है, मैं तुम्हें परेशानी में नहीं डाल रही हूँ।"

"नहीं, मैं वैसे भी कुछ नहीं कर रहा था।"

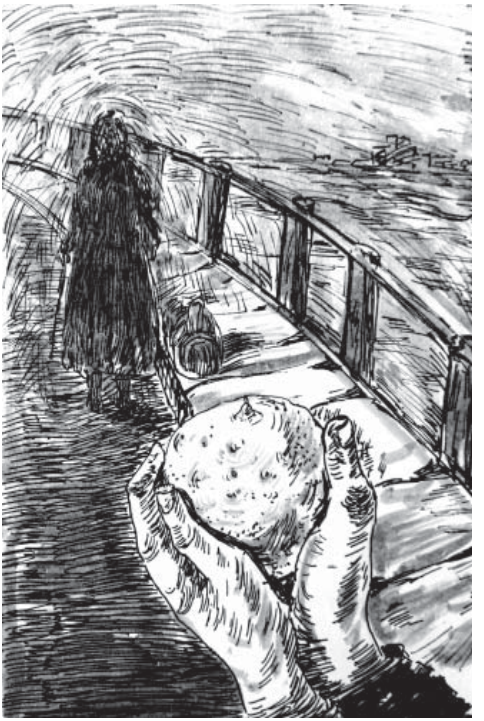

मैं उसके पीछे चलता हुआ समुद्र को ताकते उन आलीशान मकानों में से एक मकान के गेट तक जा पहुँचा। एक खम्भे पर लगी तख्ती पर लिखा हुआ था:

**मिसेज़ कैथरीन फोगार्टी फोटोग्राफर:** फोटोग्राफ्स की हाथ से रंगाई में विशेष दक्षता

"यह मैं हूँ," बुढ़िया ने बताया। "पीतल की इस तख्ती को देखकर तुम्हें मेरा महत्व समझ में आया?"

लेकिन मैं सुन नहीं रहा था। मैं तो यह सोच रहा था कि हाथ से की जाने वाली रंगाई क्या चीज़ है। उलझन में पड़ा हुआ मैं उसके मकान की ओर जाने वाली खड़ी सड़क पर चढ़ने लगा। दरवाज़ा खोलने से पहले बुढ़िया चाभी के गुच्छे को खँगालती रही, फिर उसने दरवाज़ा खोलकर एक लम्बे, अँधेरे गलियारे में प्रवेश किया।

"आ जाओ, मैं तुम्हें देने के लिए छह पेन्स का सिक्का ढूँढ़ती हूँ," उसने कहा।

"कोई बात नहीं," मैंने उससे कहा। "आपको मुझे पैसा देने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"ठीक है, तब भी तुम अन्दर तो आ ही सकते हो," उसने आग्रह किया। "मैं थोड़ी-सी गपशप ही कर लूँगी।" वह चली गई, और फिर घर की किसी अँधेरी गहराई से आती उसकी आवाज़ मुझे सुनाई दी, "दरवाज़ा बन्द कर दो, ठण्डी हवा के झोंके अन्दर मत आने दो।"

जिस पहले कमरे से होकर मैं गुज़रा, वह फोटोग्राफी का स्टूडियो था। तिपाये पर एक बड़ा-सा बॉक्स कैमरा रखा हुआ था। कमरे में एक लम्बा दीवान पड़ा था, और उसके पीछे स्याह समुद्र की पृष्ठभूमि में उभरे पुल का एक विशाल चित्र टँगा हुआ था। समुद्र के ऊपर धुँधला

आसमान और एक विशाल, फीका चन्द्रमा था। दूसरा कमरा उससे छोटा था और उसमें कोई खिड़कियाँ नहीं थीं। उसके बीचों-बीच एक मेज़ रखी हुई थी जिसकी वजह से चलने-फिरने के लिए बहुत कम जगह बची हुई थी। ज़मीन से लेकर सीलिंग तक लकड़ी की ऊँची-ऊँची अलमारियों ने दीवारों को ढँक रखा था। हर अलमारी पर एक छोटी-सी सूचना-पट्टी चिपकी हुई थी। जिस दौरान बुढ़िया मेज़ से लगी एक कुर्सी पर जाकर गहरी साँस लेते हुए बैठ गई, मैंने उनमें से कुछ सूचना पट्टियों को पढ़ा:

परिवार: 'ए' से 'सी' तक। दम्पति: 'के' से 'एम' तक। अकेले मर्द: 'पी' से 'टी' तक।

मेज़ पर उन ब्लैक एण्ड व्हाइट तस्वीरों का अम्बार लगा हुआ था जो बुढ़िया ने अपने स्टूडियो में खींचे थे। उसने अपने हैंडबैग से छह पेन्स का एक सिक्का निकाला और काँपते हाथ से मेरी ओर बढ़ाया। फिर उसने अपना हाथ वापस खींच लिया और मुझे विचित्र-सी नज़रों से देखने लगी।

"मैंने तुम्हारा चेहरा कहीं देखा है," उसने कहा। "तुम्हारा नाम क्या है?" उसकी भेदती निगाहों की वजह से अब मैं असहज महसूस कर रहा था।

"सिएन," मैंने चौकन्ने ढंग से जवाब दिया।

"क्या तुम हर रोज़ छह पेन्स कमाना चाहोगे, सिएन?"

मैंने कन्धे झिड़क दिए। "देखो, मेरे हाथ अब काँपने लगे हैं," उसने समझाया। "और मेरे पास निपटाने के लिए ढेर-सारा काम पड़ा हुआ है। मैं तुम्हें हाथ से रंग भरना सिखा सकती हूँ।"

"हाथ से रंग भरना क्या होता है?"

"ऐसा है कि लोग अपनी तस्वीरों में कुछ रंग भरवाना चाहते हैं," उसने कहा। "इससे वे तस्वीरें ज़्यादा वास्तविक, ज़्यादा सजीव लगने लगती हैं। इसलिए मैं समुद्र और आकाश और चेहरों में रंग..."

अचानक, मुझे गुस्सा आ गया। मेरा कुछ कहने का इरादा नहीं था लेकिन मेरे मुँह से निकल पड़ा। "अगर कोई चेहरा मर चुका है, अगर वह गुज़र चुका है और अब वापस आने वाला नहीं है, तो आप उसे जीता-जागता नहीं बना सकतीं," मैं ज़ोर-से चिल्लाया। "जैसे डैडी का चेहरा।"

मैं उससे दूर भागने के लिए मुड़ा। तभी मेरी निगाह अल्मारियों के ऊपर एक सूचना-पट्टी पर पड़ी जिसकी ओर मेरा ध्यान पहले नहीं गया था। उस पर लिखा हुआ था, फरिश्ते। मेरी जिज्ञासा जागी लेकिन वहाँ से भाग जाने की मेरी इच्छा ज़्यादा प्रबल थी। मैं दरवाज़े की ओर भागा।

"रुको, सिएन। मुझे ठीक-ठीक पता है कि तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है," बुढ़िया ने पुकारते हुए कहा, "वापस आ जाओ।"

मैं भागता हुआ सीधा घर जा पहुँचा। मैंने रसोई में माँ को रोते हुए देखा। मुझे लगा कि अब हम बाकी जीवन भर अकेले, उदास और धूसर ही बने रहेंगे।

***

कई हफ्ते बीत जाने के बाद ही मैं श्रीमती फोगार्टी के घर वापस लौटा। जिस दिन मैं उनके घर जा रहा था, उस दिन भी डॅन लाओगेरी धुन्ध से ढँका हुआ था। मेरी दुनिया अभी भी स्याह और सफेद ही थी, और डैडी का चेहरा अभी भी मुझसे छिपा हुआ था। और माँ से भी।

वह क्या चीज़ थी जो मुझे उस गुफानुमा मकान में वापस ले गई थी? क्या वह पोखर में तैरते उस सन्तरे की दूर की स्मृति थी? फरिश्तों का ऐलान करने वाली वह विचित्र-सी सूचना-पट्टी? उस बुढ़िया का यह दावा कि उसे ठीक-ठीक पता था कि मैं क्या महसूस कर रहा था? या बात शायद सिर्फ इतनी ही थी कि मैं उस समुद्री पुल पर अकेले बैठकर समुद्र की भुतैली फुसफुसाहटें सुनते-सुनते उकता चुका था।

जो भी वजह रही हो, लेकिन मैं वहाँ न सिर्फ एकबार गया बल्कि कई हफ्तों तक रोज़-रोज़ जाता रहा। श्रीमती फोगार्टी को निश्चय ही लगा होगा कि मुझसे ज़्यादा विचित्र लड़का उन्होंने दूसरा नहीं देखा, लेकिन वे इतनी भली थीं कि उन्होंने कभी ऐसा कहा नहीं। मैं हर रोज़ उनका दरवाज़ा खटखटाता और उनके साथ अन्दर चला जाता - और जब वे तस्वीरों को रंग रही होतीं, तो मैं एक भी शब्द नहीं बोलता था।

मैं जैसे ही उनके सामने की कुर्सी पर बैठ जाता, वे वॉटरकलर का अपना छोटा-सा साफ-सुथरा डिब्बा खोल लेतीं। उस डिब्बे में रंगों के सोलह चौखाने थे - ज़ाहिर है, वे सब मेरे लिए तरह-तरह के धूसर रंग ही थे। वे धीरे-धीरे काँपते हाथ से आकाश और बादलों में रंग भरतीं। फिर समुद्र, पुल और चन्द्रमा। उसके बाद वे कपड़ों पर आतीं - सूट और कमीज़ें, पोशाकें और टोप। फिर, वे बहुत सावधानी के साथ हाथों में रंग भरतीं। तमाम दूसरी चीज़ों पर काम हो चुकने के बाद ही वे चेहरे पर रंग भरना शुरू करतीं। और चेहरा हमेशा ही बहुत लम्बा समय लेता था। कभी-कभी वे बहुत कोमल स्वर में बोलने लगतीं और वह हमेशा ही चेहरों के बारे में कोई अनूठी सीख होती। एक दिन उन्होंने पूछा, "क्या तुमने कभी लियोनार्दो द विंची का नाम सुना है?"

मैंने सिर हिला दिया। मैंने उसके बारे में स्कूल में पढ़ा था; वह कलाकार और आविष्कारक था।

"उसका कहना था कि दुनिया में दो सौ छप्पन किस्म की नाकें हैं," उन्होंने कहा। "ज़रा कल्पना करो, सीएन।" मैंने न सुनने का बहाना

किया लेकिन मुझे उन विचित्र बारीकियों के बारे में सुनने में आनन्द आ रहा था। उन्होंने मुझे बताया कि नाक और ऊपरी होंठ के बीच के घाटी-नुमा गड्ढे को फिल्ट्रम कहा जाता है। मनुष्य अकेले प्राणी हैं जिनकी ठुड्डियाँ होती हैं। लोग एक मिनिट में लगभग पन्द्रह बार पलक झपकाते हैं।

"क्या यह अच्छी चीज़ नहीं है!" उन्होंने कहा। "क्या यह आश्चर्य की बात है कि मेरी कमज़ोर आँखें पलक झपकाते-झपकाते थक गई हैं, हा हा!"

जब वे एक तस्वीर पूरी कर लेतीं, तो इस कदर थककर टिक जातीं, कि मुझे लगता वे सो जाएँगी। फिर एक दिन वे सचमुच ही सो गईं। उसी दिन से मैंने रंगना शुरू किया।

***

मैं श्रीमती फोगार्टी को काम करते हुए बहुत बारीकी-से देखता रहता था। मुझे ठीक-ठीक मालूम था कि वे हर चीज़ - आकाश, समुद्र, चन्द्रमा -

को रंगने के लिए वॉटरकलर के किस खाने में अपना ब्रश डुबाती थीं और मिलाती थीं। हालाँकि मुझे सारे रंग धूसर ही दिखते थे, लेकिन मुझे हर बार यह पता होता था कि ठीक-ठीक किस धूसर रंग की ज़रूरत है। उन्होंने मुझे इतने लम्बे समय तक खामोश बैठे रहने की छूट दी थी कि मैं खुद को उनके प्रति ऋणी महसूस करता था। मैंने उनके लिए फुर्ती-से तीन तस्वीरों के रंग भर दिए। यह मैंने बहुत आसानी-से कर लिया। अलावा हाथों और चेहरे के, जिन्हें रंगने में मुझे इतना वक्त लगा कि मुझे यकीन था कि वे जाग जाएँगी और मुझे पकड़ लेंगी।

श्रीमती फोगार्टी जल्दी ही हरकत में आ गईं। उन्होंने उन तस्वीरों की ओर देखा। मुझे डर था कि मैंने उन्हें बिगाड़ दिया होगा, लेकिन उनकी मुस्कराहट से ही मैं समझ गया कि मैंने वैसा कुछ नहीं किया था। मैं इतना खुश महसूस कर रहा था कि जो सवाल पूछने की मेरी बड़ी तमन्ना थी, वह मेरी ज़ुबान से फिसल गया।

"श्रीमती फोगार्टी, वह अलमारी क्या है, जिसपर फरिश्ते लिखा हुआ है?"

"ओह, मेरे फरिश्ते, उन पर काम करना सबसे ज़्यादा मुश्किल है," उन्होंने कहा। "सीएन, मेरे फरिश्ते उन लोगों की तस्वीरें हैं जो गुज़र चुके हैं।" उनके धूसर, झुर्रीदार हाथ ने मेरा कन्धा छुआ। मैं सँकुचाया नहीं।

"और जानते हो, सिएन?" उन्होंने कहा। "तुम्हारा हाथ इतना सध चुका है कि तुम अब फरिश्ते का चेहरा रंग सकते हो।"

मेरा दिल धड़क उठा। मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल सके। जब वे उठकर फरिश्तों वाली अलमारी तक गईं, तो मेरी आँखें उनका पीछा करती रहीं। वे मुड़ीं। उनके एक हाथ में एक आदमी की तस्वीर थी; दूसरे हाथ में, एक छोटा-सा सपाट, लकड़ी का डिब्बा था।

***

"याद है, जब मैं तुमसे पहली बार मिली थी और मैंने कहा था कि मैंने तुम्हारा चेहरा कहीं देखा है?"

मैंने सिर हिलाया।

"ऐसा इसलिए था क्योंकि तुम्हारा चेहरा तुम्हारे पिता से बहुत मिलता है," उन्होंने कहा।

मेरा सिर इस कदर चकरा रहा था कि लगता था मैं बेहोश होकर गिर पड़ूँगा।

"दरअसल, मैं उनसे अपने लिए रंग खरीदती थी," उन्होंने कहा। "और एक दिन वे मेरे लिए कुछ नए रंग लेकर यहाँ आए थे और मैंने उनकी तस्वीर खींच ली थी। मुझे कभी मौका ही नहीं मिल सका कि मैं यह तस्वीर उनको दे पाती। अब यह तुम्हारी है। और वे रंग भी। मैंने उनका इस्तेमाल कभी नहीं किया।"

उन्होंने वह तस्वीर मेरे सामने रख दी। मैं उसकी ओर देख नहीं सका क्योंकि मुझे लग रहा था कि जब मैं डैडी को देखूँगा तो मेरा दिल फट पड़ेगा। उन्होंने वॉटरकलर्स का वह नया डिब्बा खोला।

"मैं नहीं कर सकता," मैंने कमज़ोर लहज़े में कहा।

"दुनिया में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिससे डरा जाए," उन्होंने कहा। "सुनो, सिएन, हमारी आँखें महज़ कैमरा नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि हम जिन लोगों से प्यार करते हैं उनकी ब्लैक एण्ड व्हाइट तस्वीरें उतार लेते हों और उन्हें अपने दिमाग की किसी अलमारी में बन्द करके रख देते हों और जब उन्हें याद करने का हमारा मन हुआ तो उन तस्वीरों को निकालकर देख लेते हों। नहीं, जब याद करने का अवसर आता है, तो हम सब कलाकार होते हैं जो अपनी स्मृतियों की तस्वीर गढ़ लेते हैं। हम रंगों, ध्वनियों, अनुभूतियों का इस्तेमाल करते हैं। अपनी आँखें बन्द करो, सिएन।"

लग तो अजीब-सा रहा था, लेकिन मैंने वही किया जो उन्होंने कहा था। मैं उनकी आवाज़ सुन रहा था, समुद्र की मर्मर की तरह कोमल आवाज़।

"गर्मियों के एक सुन्दर दिन की कल्पना करो, सिएन। अपनी पीठ पर धूप की तपिश महसूस करो। तट से आती हँसने और पानी के छपछपाने की आवाज़ें सुनो। तट पर पड़ी कुर्सियों के रंगों को देखो, नीले और पीले और हरे। 'पंच एण्ड जूडी' बूथ की लाल और सफेद पट्टियों को देखो।" अब वे और भी हल्के स्वर में बोल रही थीं, उनका हर शब्द तट पर फेन छोड़ती लहर की तरह एक उच्छवास जैसा था। "महसूस करो। सुनो। देखो। याद करो। अपनी खुद की यादें रचो, सीएन, अपने डैडी की अपनी यादों में रंग भरो। इस तरह तुम उन्हें कभी नहीं खोओगे।"

मैंने अपनी आँखें खोलीं। जैसे ही धूसर रंग में डूबे ब्रश ने तस्वीर को छुआ वैसे ही वह रंग आसमानी नीले की अपनी सम्पूर्णता में चमक उठा। मैं उत्तेजना से भरकर रंग भरता जा रहा था। चमकीले, सफेद बादल में लाल का पुट था। नीले समुद्र की तरंगें गहरे पीले की आभा लिए हुए थीं। और आसमान का बड़ा गोला अब चन्द्रमा नहीं था। वह चमकीला नारंगी सूरज था। जब मैं डैडी के हाथों में रंग भर रहा था, तो मेरा दाहिना हाथ इस कदर काँप रहा था कि मुझे उसको अपने बाँएँ हाथ से कसकर पकड़ना पड़ा। हल्के धूमिल लाल रंग के हर आघात के साथ मैं उनके दृढ़ किन्तु कोमल स्पर्श को महसूस कर सकता था।

यादें तेज़ी-से वापस लौटने लगीं, उस दिन की यादें जब हमने अपने-अपने पसन्दीदा रंगों के बारे में बात की थी। सजीव स्मृतियाँ जिन्हें मैं

महसूस कर सकता था, देख सकता था, सुन सकता था। मैंने अपने बालों पर उनके हाथ की रगड़ को और गुड़िया के बालों के उस स्वाद को महसूस किया जो इतना वास्तविक था कि मेरे मुँह में पानी आ गया। मैंने बालों के उस बड़े और बिखरे हुए झुरमुट को देखा जो इतना लाल था कि लगभग नारंगी लगता था। मैंने उनकी रेतीली मूँछें देखीं और उनकी नाचती हुई भूरी आँखों को देखा। जब मैं वह तस्वीर लेकर माँ के पास घर की ओर भाग रहा था, तो मुझे उनके ज़ोरदार अट्टहास से झरता गीत सुनाई दे रहा था। और एक विशालकाय नारंगी सूरज ने डॅन लाओगेरी और हमारी धूसर ज़िन्दगियों पर छाई धुन्ध को उड़ा दिया।

---

**मार्क ओ'सुलीवान:** इनकी इच्छा संगीतकार और चित्रकार बनने की थी। फिर, अगर वे इनमें से कुछ भी बन पाते, तो वे लेखक भी बनना चाहते थे। बहरहाल, यही सुली (जो उनका फुटबॉल के पुराने दिनों का उपनाम हुआ करता था) आपके सामने हैं। उन्होंने छह उपन्यास बच्चों के लिए लिखे हैं, और ढेरों कहानियाँ और कविताएँ उन विचित्र अजनबियों के लिए लिखी हैं जो खुद को वयस्क कहते हैं।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: मदन सोनी:** आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय वरिष्ठ हिन्दी लेखक व अनुवादक। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन्होंने उम्बर्तो एको के उपन्यास *द नेम ऑफ दि रोज़*, डैन ब्राउन के उपन्यास *दि द विंची कोड* और युवाल नोह हरारी की किताब *सेपियन्स: अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ ह्यूमनकाइंड* समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए हैं।

**सभी चित्र: हरमन:** चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहती हैं।

एकलव्य

# जीवन की बहार

लेखक - माधव गाडगिल
ISBN: 978-93-87926-44-8
पेपरबैक; पेज - 152
मूल्य - ₹150/-

धरती पर जीवन की शुरुआत से अब तक की कहानी।

करोड़ों साल पहले जीवन की शुरुआत से अब तक कितनी बार जीव-जन्तु पनपे और विलुप्त हुए? इन्सान और दूसरे जीव-जन्तुओं के स्वभाव में कितनी समानता और कितना अन्तर है? क्या इन्सान इस धरती पर हमेशा से था? या हमेशा रहेगा?

चलते हैं मशहूर वैज्ञानिक डॉ. माधव गाडगिल के साथ ऐसे ही तमाम सवालों के जवाब खोजने...

www.eklavya.in | www.pitarakart.in

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें - +91 755 297 7770-71-72-73; books@eklavya.in

# सवालीराम

**सवाल:** फन्नी-प्लास्टिक कैसे बनती है?

**- माध्यमिक शाला, मानिकपुर आश्रमशाला, ज़िला-अमरावती, महाराष्ट्र**

## जवाब: फन्नी क्या है?

आम तौर पर प्लास्टिक फन्नी का मतलब होता है, प्लास्टिक की थैली। यह पॉलीएथीलीन नाम के एक पॉलीमर यानी बहुलक की बनी होती है। आविष्कार होने के साथ ही पॉलीएथीलीन का उपयोग तरह-तरह की बोतलें और थैलियाँ बनाने में होने लगा क्योंकि यह अत्यन्त लचीला पदार्थ है। पॉलीएथीलीन वास्तव में कई सारे एथीलीन अणुओं को जोड़कर बनाया गया पदार्थ है। एथीलीन को मोनोमर कहते हैं और पॉलीएथीलीन (या पॉलीथीन) इनसे बना पॉलीमर या बहुलक है।

इस पदार्थ को बनाने की नई तकनीक के साथ ही एक नई तकनीक का भी आविष्कार हुआ था जिसे इंजेक्शन मोल्डिंग कहते हैं। इसमें पिघले हुए प्लास्टिक को किसी भी आकार के साँचे में डालकर ठण्डा करने पर मनचाही चीज़ें बनाई जा सकती हैं। इस तकनीक की बदौलत कुर्सियों से लेकर प्लास्टिक बैग तक बनाना सम्भव हो गया। इसी का परिणाम था कि प्लास्टिक से बनी चीज़ों ने घर-घर में जगह बना ली।

## रासायनिक संश्लेषण

पॉलीथीन बनाने के लिए एथीलीन गैस को लिया जाता है और एथीलीन के अणुओं को एक-दूसरे से जोड़कर

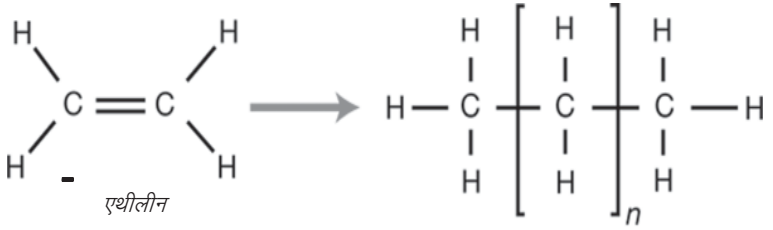


***चित्र-1:*** *एथीलीन के अणुओं की एक-दूसरे से जुड़कर बनी लम्बी शृंखला।*

लम्बी-लम्बी शृंखलाएँ बनाई जाती हैं। मोनोमर के रूप में अलग-अलग पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है और संश्लेषण की विधि से यह तय होता है कि मोनोमर की कितनी लम्बी शृंखलाएँ बनेंगी। मोनोमर के प्रकार और शृंखला की लम्बाई से पॉलीमर के गुण तय होते हैं।

## पॉलीथीन का उत्पादन

पॉलीथीन के उत्पादन के लिए एथीलीन मुख्य रूप से पेट्रोलियम से प्राप्त की जाती है। यह दो कार्बन परमाणुओं और चार हाइड्रोजन परमाणुओं के जुड़ने से बनी एक गैस है। अत: इसका अणु भार 28 है। इसे जब किसी उत्प्रेरक की उपस्थिति में काफी अधिक तापमान (लगभग 300 डिग्री सेल्सियस) और अत्यधिक दबाव (वायुमण्डल के दबाव से कई सौ गुना ज़्यादा) पर रखा जाता है तो एथीलीन के अणु जुड़कर लम्बी-लम्बी शृंखलाएँ बना लेते हैं। शृंखला कितनी लम्बी बनेगी यह दबाव, तापमान तथा उत्प्रेरक पर निर्भर करता है। सामान्य व्यापारिक पॉलीथीन में 1000 से 10,000 तक मोनोमर इकाइयाँ होती हैं। ऐसी पॉलीथीन का अणु भार 28,000 से 2,80,000 के बीच होता है। इस क्रिया को करने के लिए तरह-तरह के रिएक्टरों का उपयोग होता है। कई बार क्रिया के दौरान ही विभिन्न रंजक व अन्य पदार्थ मिलाए जाते हैं जिससे पॉलीमर के गुण निर्धारित होते हैं।

शृंखलाओं की लम्बाई के आधार पर पॉलीथीन कई प्रकार के हो सकते हैं – अल्प-घनत्व, मध्यम घनत्व और उच्च घनत्व। उत्पादन की विधि के अनुसार घनत्व 0.915 ग्राम प्रति घन से.मी. से लेकर 0.970 ग्राम प्रति घन से.मी. तक हो सकता है।

पॉलीथीन उत्पादन की एक तकनीक में पॉलीथीन को पिघलाकर एक साँचे में से गुज़ारा जाता है। साँचे में वह विशेष आकार (जैसे चादर, पाइप, बेलन वगैरह) के रूप में जमकर ठण्डा हो जाता है। साँचा किस प्रकार का है और साँचे से

निकलने के बाद बनी चादर या नली के साथ की गई प्रक्रिया से तय होता है कि वह कितनी मज़बूत होगी। इस विधि से जो पॉलीथीन चादर बनती है, उसकी मोटाई 20-200 माइक्रोमीटर के बीच होती है। लेकिन पर्यावरण जोखिम को देखते हुए फिलहाल 50 माइक्रोमीटर से पतली चादर बनाने की अनुमति नहीं है।

## पॉलीथीन के विकल्प

यह तो जानी-मानी बात है कि पॉलीथीन तथा अन्य प्लास्टिक अत्यन्त उपयोगी तथा किफायती पदार्थ हैं। लेकिन इनकी एक समस्या है - प्रकृति में ये सड़-गलकर नष्ट नहीं होते। सालों-साल ये पड़े रहेंगे, टूट-फूट जाएँगे लेकिन सड़ेंगे नहीं। इस कारण से ये पर्यावरण तथा जीव-जन्तुओं के लिए हानिकारक हो सकते हैं और इनके विकल्पों की खोज जारी है। एक सलाह यह दी जाती है कि इनका उपयोग कम-से-कम किया जाए। जहाँ सम्भव हो, कपड़े के झोलों या अन्य विकल्पों का उपयोग हो।

---

**कोकिल चौधरी:** *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी:** *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

### इस बार का सवाल

**सवाल:** चाँद दिन में कहाँ जाता है, सूरज रात में कहाँ जाता है?

**- माध्यमिक शाला, मानिकपुर आश्रमशाला, ज़िला-अमरावती, महाराष्ट्र**

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को *संदर्भ* **की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**

RNI No.: MPHIN/2007/20203

कॉमन नोरमोन

कॉमन रोज़

प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, लाटबेडी, भोपाल - 462 023 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।